मुकम्मल व मुदल्लल

मसाइल व आदाबे मुलाक़ात

कुरआन व हदीस की रौशनी में

हज़रत मुफ़्तियाने किराम दारूलउलूम देवबंद की तस्दीक़ व ताईद करदा

मुअल्लिफ़

मौलाना क़ारी मुहम्मद रफ़अ़त क़ासमी

(मुदर्रिस दारूलउलूम देवबंद)

मुकम्मल व मुदल्लल

मसाइल व आदाबे मुलाक़ात

कुरआन व हदीस की रौशनी में

हज़रत मुफ़्तियाने किराम दारुलउलूम देवबंद की तस्दीक़ के साथ

मुअल्लिफ़

मौलाना क़ारी मुहम्मद रफ़अ़त क़ासमी

(मुदर्रिस दारुलउलूम देवबंद)

लिप्यान्तरः

मो० मोकर्रम ज़हीर

नाशिर

अन्जुम बुक डिपो

मटिया महल, जामा मस्जिद (दिल्ली)

किताब का नामः... मसाइल व आदाबे मुलाक़ात

मुसन्निफ़ः.......... मौलाना क़ारी मुहम्मद रफ़अ़त क़ासमी

लिप्यान्तरः......... मो० मोकर्रम ज़हीर

ज़ेरे निगरानीः...... शकील अन्जुम देहलवी

तादादः........... 1100

Masail-O-Adabe Mulaqat

By:Maulana Qari Md. Rafat Qasmi

Published by

Anjum Book Depot

466, Matia Mahal, Jama Masjid, Delhi - 6

फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

उन्वान सफ़्हात

राये आली

हज़रत मौलाना मुफ़्ती ज़फ़ीरुद्दीन साहब ज़ीदा मुजदुहुम (दारुलऊम देवबंद)

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

"اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعَالَمِیْنَ وَالصَّلٰوۃُ وَالسَّلَامُ عَلٰی
سَیِّدِ الْمُرْسَلِیْنَ وَعَلٰی اٰلِہٖ وَصَحْبِہٖ اَجْمَعِیْنَ"

इस्लाम एक मुकम्मल निज़ामे हयात है। जो हर मंज़िल पर इंसान के लिए अपने अन्दर हिदायात रखता है। ज़िन्दगी का कोई गोश और कोई मरहला नहीं है, जहां इस निज़ामे हयात में रहनुमाई न मिलती हो, किताब व सुन्नत और इन दोनों से मुस्तंबत अहकाम व मसाइले फ़िक़्ह में पूरी तफ़सील मौजूद है।

दुनयवी ज़िन्दगी में बड़े हों या छोटे, सभों के लिए सरवरे कौनैन (स.अ.व.) की हयाते मुबारका में उस्वह मौजूद है। मिलने मिलाने, घरों में आने जाने और दूसरों से मुलाक़ात करने तक के क़वानीन हैरत अंगेज़ तौर पर मुरत्तब हैं। आदमी इसकी तफ़सील पढ़ कर हैरान रह जाता है कि इस्लाम ने इन मामूली चीज़ों तक को नहीं छोड़ा है।

सच पूछिए तो तरबियत यहीं से शुरू होती है। बच्चों को जब तक इब्तिदा ही से इन क़वानीन पर अमल नहीं कराया जाए वह सही मानों में मुहज़्ज़ब व मुतमद्दिन नहीं बन सकते हैं। आज छोटों में जो आज़ादी है और आम तौर पर जिस तरह से अदब व एहतेराम का जज़्बा ख़त्म होता जा रहा है। ये दरअस्ल वालिदैन,

और घर वालों की बेतवज्जुही और इस्लामी आंदाब से बेएतेनाई का नतीजा है।

अरसा से इसकी ज़रूरत महसूस की जा रही थी, कि आदाबे मुआशरत का वह हिस्सा मुरत्तब हो कर सामने आए जिससे घर के बच्चों की तरबियत करने वाले रहनुमाई हासिल कर सकें। और बेतकल्लुफ़ वह किताब तमाम वालिदैन और मुरब्बियों के हाथों में दी जा सके। ये बात हमारी दिली मुसर्रत का बाइस है कि दारुलउलूम देवबंद के एक उस्ताज़ जो बच्चों ही के हिफ़्ज़े कुरआन की तालीम पर मामूर हैं। उनकी तवज्जोह इस तरफ़ हुई और उन्होंने पूरी मेहनत और जांफ़शानी से एक उम्दा किताब इस मौज़ूअ़ पर मुरत्तब कर दी। ये हैं मोहतरम मौलाना रफ़अ़त साहब क़ासमी। पुरी उम्मत की तरफ़ से अपनी इस ख़िदमत पर लाइक़े तबरीक व तहनियत हैं।

ख़ाकसार का तमाम मुसलमानों को मश्वरा है कि वह इस किताब का ज़रूर मुतालअ़ा करें। अपने नौजवानों को पढ़ने को दें। बल्कि पढ़ कर घर के तमाम अफ़राद को सुनाऐं। जो कुछ पढ़ें या सुनें उस मौज़ूअ़ पर खुद भी अमल करें और दूसरों को भी अमल की ताकीद करें।

अख़ीर में दुआ़ है कि अल्लाह तआ़ला मौलाना मौसूफ़ की इस गिरांक़द्र ख़िदमत को कुबूल फ़रमाए।

आमीन या रब्बलआलमीन!

तालिबे दुआः
ज़फ़ीरुद्दीन गुफ़िरलहू
मुफ़्तिये दारुलउलूम देवबंद
3 जमादिलआख़िर 1406 हिजरी

❖❖❖

इरशादे गिरामी

हज़रत मौलाना मुफ़्ती सईद अहमद साहब मद्दज़िल्लहुलआली पालनपुरी मुहद्दिसे कबीर दारुलऊम देवबंद

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

इंसान مَدَنِی الطَّبْعْ है। बाहमी मेल जोल उसकी फ़ितरत है। इस्लाम ने इस फ़ितरी सेग़ा में भी इंसान की राह नुमाई की है और मुलाक़ात के आदाब ब्यान किए हैं। इसकी अहमियत के पेशे नज़र ही क़ुरआन करीम में इस्तीज़ान (इजाज़त) का हुक्म मुफ़स्सल नाज़िल फ़रमाया गया है। मगर लोग सहल निगारी की वजह से या तालीमाते इस्लामी से नावाक़िफ़ीयत की वजह से इस्लामी आदाब पर अमल पैरा नहीं होते और इसे कुछ ज़्यादा बुरा भी नहीं समझते। मुकर्रम व मोहतरम मौलाना रफ़अ़त क़ासमी साहब ज़ीदा फ़ज़्लुहू ने इस तरफ़ तवज्जोह मबज़ूल की है और इस सिलसिले के जुमला अहकाम व आदाब मुरत्तब किए हैं। मुझे उम्मीद है कि ये किताब मुसलमानों के लिए बहुत मुफ़ीद साबित होगी।

इस्लामी अहकाम ख़्वाह वह किसी मरतबे के हों उन पर अमल पैरा होना ख़ैर ही ख़ैर है और मुआ़शरा के लिए बरकात व ख़ैरात का ज़रीआ़ हैं। मुसलमानों से उम्मीद है कि वह इस किताब की क़द्र करेंगे और इससे इस्तिफ़ादा करेंगे। क्योंकि एक ऐसा बाब जिसके मसाइल आम तौर पर लोगों के सामने नहीं आते, फ़ाज़िल मुअ़ल्लिफ़ ने उसको बहुत दीदा रेज़ी से, सलीक़ा के साथ जमा किया है। अल्लाह तआ़ल इस रिसाला को मुसलमानों के हक़ में

मुफ़ीद बनाऐं और मुसन्निफ़ के हक़ में दारैन की बरकात का ज़रीआ़ बनाऐं। आमीन!

सईद अहमद ग़ुफ़िरलहू (पालनपुरी)
ख़ादिम दारुलउलूम, देवबंद
22 शाबान 1406 हिजरी

तक़रीज़

मुअर्रिख़े इस्लाम हज़रत मौलाना क़ाज़ी अतहर साहब मुबारकपुरी मद्दज़िल्लहू

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

हामिदन व मुसल्लियन!

इस्लामी मुआशरा की अव्वलीन दर्सगाह और पहली तरबियत गाह घर की चहार दीवारी है। इसी में अफ़राद बनते हैं और बनाए जाते हैं। अगर माँ की गोद और घर के सहन में अच्छी तालीम व तरबियत हो गई तो ये अफ़राद बेहतरीन मुआशरा का बाइस होंगे। इसीलिए इस्लाम में शख़्सियत साज़ी के लिए सब से पहले इसी पर तवज्जोह दी गई है और अन्दुरूने ख़ाना से मुतअल्लिक़ तरह तरह के अहक़ाम कुरआन करीम और अहादीस में आए हैं जिनमें इजाज़त को बड़ी अहमियत दी गई है।

एक मकान और कुंबा में मुख़्तलिफ़ हैसियात और दरजात के लोग रहते हैं। उनके हुकूक़ व अदाब की रिआयत ज़रूरी है, छोटों पर भी और बड़ों पर भी, ताकि ख़ानगी ज़िन्दगी में हुस्न व ख़ूबी बाक़ी रहे और किसी फ़र्द को किसी से अज़ीयत व शिकायत न हो। इसकी बुनियादी सूरत इजाज़त है।

इजाज़त की शक्ल क्या है और उसकी किस क़दर अहमियत व ज़रूरत और इफ़ादियत है? इसके बारे में किताबों में तफ़सीलात हैं। ज़ेरे नज़र किताब में निहायत जामेअ़ तौर पर उनका ख़ुलासा ब्यान किया गया है। ज़रूरत है कि मुसलमानों के घरों में इस

किस्म की तालीमात आम की जाऐं और बच्चों को इब्तिदा ही से उन पर अमल करने की ताकीद की जाए।

मौलाना हाफिज़ रफअ़त साहब क़ासमी ने निहायत सलीक़ा मंदी और ज़िम्मादारी से ये किताब मुरत्तब की है, अल्लाह तआ़ला उनकी इस ख़िदमत को कबूल फरमाए और मुसलमानों को इससे ज़्यादा से ज़्यादा नफ़ा पहुंचाए।

काज़ी अतहर मुबारकपुरी
शैखुलहिन्द एकेडमी, दारुलउलूम देवबंद
सफ़र 1406 हिजरी

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

इन्तिसाब

वालिदा माजिदा कुद्दसा सिर्रुहा के नाम

मैं अपनी इस पहली तसनीफ़ को अपनी मादरे मेहरबान के नाम मन्सूब करता हूं, जिनकी दिली ख़्वाहिश और काविशों की बदौलत मुझे किताब व सुन्नत की दौलत हासिल हुई और इस ख़िदमत के लाइक़ हुआ आपके दिल में ये ख़्याल पैदा हुआ, और वालिद मरहूम से अर्ज़ किया कि सब औलाद को दुनियावी तालीम में लगा दिया, और अगर मरने के बाद सवाल हो गया कि- दीन की तालीम के लिए क्या किया? फिर हमारा जवाब क्या होगा? चुनांचे वालिदा माजिदा ने मुझे "दारुलउलूम देवबंद" के सिपुर्द कर के अल्लाह के हुज़ूर में दस्त बदुआ़ हुईं और अल्लाह तआ़ला ने शर्फ़े क़बूलियत से नवाज़ा।

प्यारी अम्माँ! गो आज आप हम में मौजूद नहीं हैं, लेकिन मेरे दिल और मेरी निगाहों में वह मंज़र समाया हुआ है कि आप अल्लाह तआ़ला के सामने हाथ उठाए हुए हैं, और मेरे इल्म व अमल के लिए दुआ़ कर रही हैं, और मेरी भी दुआ़ है कि अल्लाह रब्बुलइज़्ज़त आप दोनों के दरजात बुलंद फ़रमाए, और जन्नतुलफ़िरदौस में करवट करवट चैन नसीब फ़रमाए। आमीन!

आपका
मुहम्मद रफ़अ़त क़ासमी

अर्ज़े मुअल्लिफ़

بسم اللہ الرحمن الرحیم

نَحْمَدُهٗ وَ نُصَلِّیْ عَلٰی رَسُوْلِهِ الْكَرِیْم ط اما بعد۔

अहक़र ज़मानए तालिब इल्मी में देखता था कि दारुलउलूम देवबंद के मुम्ताज़ उस्ताज़ मुहतरम हज़रत मौलाना वहीदुज़्ज़मां साहब मद्दज़िल्लहू ने अपने यहां ये क़ानून बना रखा था कि जो शख़्स मिलने आए अव्वलन दरवाज़ा पर सलाम कर के इजाज़त तलब करे और अपना नाम बताए। इजाज़त मिल जाए तो कमरा में दाख़िल हो, वरना बिला इजाज़त दाख़िल होने की जुरअत न करे। कभी कोई क़िस्मत का मारा बग़ैर इजाज़त तलब किए कमरा में दाख़िल हो जाता है तो उसकी ख़ैर न रहती, ख़फ़ा होते, फिर समझाते कि सुन्नत तरीक़ा इस तरह है, अगर तालिबे इल्म होता तो उससे फ़रमाते वापस जाइए। बाहर से सलाम कीजिए और इजाज़त ले कर अन्दर आइए।

जब मेरा अक़्द हज़रत मौसूफ़ की साहबज़ादी से हुआ, तो मैंने ख़्याल किया कि शायद घर में उसूल न होगा। चुनांचे मैं एक रोज़ हज़रत के कमरा में इजाज़त के बग़ैर दाख़िल हो गया। हज़रत को इस तरह से बेइजाज़त आना नागवार गुज़रा। आइंदा के लिए हिदायत फ़रमाई कि ठीक है कि ये तुम्हारा घर हो गया है, लेकिन ये बात ज़ेहन में रहनी चाहिए कि अपने घर में भी इजाज़त के बग़ैर आना शरीअत के तरीक़ा के ख़िलाफ़ है। उस वक़्त मेरे ज़ेहन में ये बात आई कि इतने अहम हुक्म को अवाम तो दरकिनार

बाज़ ख़्वास तक पसे पुश्त डाले हुए हैं और ये ज़र्रीं उसूल बैनलमुस्लिमीन मतरूकुलअमल हो कर रह गया है।

मेरे दिल में ये दाईया पैदा हुआ कि कुरआन करीम की मोतबर तफ़ासीर और अहादीसे सहीहा से घर में दाख़िल होने और मुलाक़ात करने के उसूल यक्जा कर देने चाहिएं, बहुत मुम्किन है कि किसी की हिदायत का ज़रीआ़ बन कर मेरे लिए ज़ादे आख़िरत बन जाए। चुनांचे अल्लाह का नाम लेकर मैंने ये काम शुरू कर दिया है। अल्लाह तआ़ला इसकी तकमील फ़रमाए। आमीन!

मुहम्मद रफ़अ़त क़ासमी
मुदर्रिस, दारुलउलूम, देबवंद
यकुम मुहर्रमुलहराम 1406 हिजरी

हर्फ़े आग़ाज़

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

يَا اَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَاتَدْ خُلُوْا بُيُوْتاً غَيْرَ بُيُوْتِكُمْ حَتّٰى تَسْتَاْنِسُوْا وَتُسَلِّمُوْا عَلٰى اَهْلِهَا ط ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ○ فَاِنْ لَّمْ تَجِدُوْا فِيْهَآ اَحَدً افَلَا تَدْ خُلُوْ اهَاحَتّٰى يُؤْذَنَ لَكُمْ وَاِنْ قِيْلَ لَكُمُ ارْجِعُوْا فَارْ جِعُوْا هُوَاَزْكٰى لَكُمْ وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ○ لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَدْ خُلُوْا بُيُوْتاً غَيْرَ مَسْكُوْ نَةٍ فِيْهَا مَتَاعٌ لَّكُمْ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ مَاتُبْدُوْنَ وَمَا تَكْتُمُوْنَ○ پ-١٨

तर्जुमाः ऐ ईमान वालो तुम अपने घरों के सिवा दूसरे घरों में दाख़िल न हो, जब तक इजाज़त हासिल न कर लो और उनके रहने वालों को सलाम न कर लो, यही तुम्हारे लिए बेहतर है ताकि तुम ख़्याल रखो, फिर अगर उन घरों में तुम को कोई मालूम न हो लो उन घरों में न जाओ, जब तक तुम्हें इजाज़त न दी जाए। और अगर तुम से कह दिया जाए कि लौट जाओ तो तुम लौट जाया करो। यही बात तुम्हारे लिए बेहतर है। अल्लाह तुम्हारे आमाल की ख़बर रखता है। तुम को ऐसे मकानात में जाने का गुनाह न होगा जिनमें कोई रहता न हो उनमें तुम्हारी कुछ बरत हो और तुम जो कुछ ऐलानिया करते हो और जो कुछ पोशीदा तौर पर करते हो अल्लाह तआ़ला सब जानता है। (हज़रत थानवी रह.)

❖❖❖

तालीमाते इस्लाम की जामेईयत

किसी ख़राबी और बुराई के इंसिदाद की तकमील उसी वक़्त हो सकती है जब उसके तमाम अस्बाब व ज़राए व वसाएल और मूजिबात की बेख़ कनी कर दी जाए। इस्लाम चूंकि एक हकीमाना और मुसलिहाना मज़हब है और उसने इंसानी ज़िन्दगी के तमाम शोबाजात के लिए क़वानीन बना रखे हैं। ज़िन्दगी का कोई गोशा ऐसा नहीं जो उसकी निगाह से ओझल हो। उसके यहां अख़लाक़ी, मआशरती, इज्तिमाई और समाजी तमाम इस्लाहात के मुकम्मल और जामेअ़ क़वानीन मुरत्तब व मुज़ैयन हैं। उसने हर एक बुराई की रोक थाम की है। मसलन ज़िना में मुब्तला होने के जितने असबाब हो सकते हैं उसने सब ही की रोक थाम की है, और उसके जो असबाब हो सकते हैं सब पर पहरा बिठा दिया है और शह्वानी जज़्बात की तस्कीन के लिए एक फ़ितरी रास्ता खोल रखा है। ज़िना का पहला और बुनियादी रास्ता नज़रबाज़ी है। लोगों ने मुहब्बत की तारीफ़ की है कि एक नादीदा शय है जो आंखों के रास्ता दिल में उतर आती है। इस्लाम ने हिदायत की है कि निगाह पस्त रखी जाए और अजनबी औरत पर बिला वजह निगाह न डाली जाए। परदा की अहमियत से किसी को इन्कार की गुंजाइश नहीं है। अगर मुवासलात

व तअ़ल्लुक़ात के ज़राए मुन्क़ता हों तो फिर कोई वजह नहीं है कि ज़िना के केस का कोई वाक़िआ पेश आ जाए, उमूमन ज़िना के केस वहीं पर होते हैं जहां औरत व मर्द में किसी क़िस्म की रुकावट न हो, दूर व नज़दीक का रिश्ता या पास पड़ोस का तअल्लुक़ हो, एक दूसरे के मकान में बग़ैर इजाज़त आमदो रफ़्त हो, किसी क़िस्म का तकल्लुफ़ न हो, ख़लवत व जलवत में कोई ख़ास एहतियात न हो, किसी औरत के शौहर से किसी की दोस्ती हो और वह घर में बेतकल्लुफ़ चला आए या और इसी क़िस्म के असबाब ही ज़िना के मवाक़ेअ़ फ़राहम करते हैं। और ख़ुफ़्या दबी हुई चिंगारी को भड़काते हैं। मर्द व औरत का सिन्फ़ी तअल्लुक़, एक दूसरे की तरफ़ कशिश फ़ित्री है। जब मवाक़ेअ़ न हों और मवाक़ेअ़ मुयस्सर आ जाएं तो शह्वानी क़ूवतों की कारफ़रमाई ज़ुहूर में आ जाती है।

इसीलिए इस्लाम ने इस सिलसिला में ज़रूरी हिदायात दी हैं। चुनांचे उसकी ये तालीम है कि कोई शख़्स एक दूसरे के मकान में बेधड़क न जाए। वैसे भी बेधड़क जाना वह्शियाना और जाहिलाना फ़ेल है। शाइस्ता और मुहज़्ज़ब इंसान इसको क़तअन पसंद नहीं करते, हद यह है कि इस्लाम ने बाप हो या बेटा या कोई दूसरा क़रीबी रिश्तादार किसी को भी बग़ैर इजाज़त घर में दाख़िल होने की इजाज़त नहीं दी है। इसको जाहिलाना तरीक़ा और बदतहज़ीबी का मुज़ाहरा क़रार दिया है। क्योंकि रिश्ता अगर क़वी नहीं है या बिल्कुल अजनबीयत है तो उस वक़्त बग़ैर इजाज़त के दाख़िल होना बड़े बड़े क़बाएह और फ़ितनों का बाइस हो सकता है। मुक़ातिल इब्ने हैयान

(रज़ि.) फ़रमाते हैं कि ज़मानए जाहिलीयत में सलाम का दस्तूर न था। एक दूसरे से मिलते थे लेकिन सलाम न करते थे। किसी के घर जाते तो इजाज़त नहीं लेते थे। बल्कि यूंही घुस जाते और फिर क़हते कि मैं आ गया हूं तो बसा औक़ात ये घर वालों पर गिरां गुज़रता था। ऐसा भी होता कि साहबे ख़ाना कभी ऐसी हालत में होता कि उसका आना बहुत ही बुरा लगता।

अल्लाह तआला ने उस जाहिली दस्तूर व क़वाइद को अच्छे आदाब के साथ बदल दिया। इसीलिए फ़रमाया है– "ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ" यही तरीक़ा तुम्हारे लिए बेहतर है। मकान वाले और आने वाले को इसमें राहत और आराम है। अल्लाह तआला ने उसका इस क़दर एहतेमाम फ़रमाया है कि कुरआन करीम में इसके लिए मुफ़स्सल अहकाम नाज़िल हुए हैं, और रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अपने क़ौल व अमल से इसके लिए जितनी ताकीद फ़रमाई है उतना ही आज कल मुसलमान उससे ग़ाफ़िल हो गए हैं। बाज़ पढ़े लिखे नेक लोग भी न इसको गुनाह समझते हैं और न इस पर अमल करने की फ़िक्र करते हैं। दुनिया की दुसरी मुहज़्ज़ब क़ौमों ने इसको इख़्तियार कर के अपने मुआशरा को दुरुस्त कर लिया है। मगर मुसलमान जिसको अमल में सब से आगे होना चाहिए सब से पीछे नज़र आते हैं।

तलबे इजाज़त की वुजूहात

(1) अल्लाह तआला ने हर इंसान को उसके रहने की जगह अता फ़रमाई है, ख़्वाह मालिकाना हो या किराया पर और या आरियतन हो, जब तक भी वह उस मकान में रहे, रहने वाले का ही कहलाएगा। उस मकान में किसी

दूसरे हत्ता कि मालिके मकान को भी बग़ैर इजाज़त दाख़िल होना जाइज़ नहीं है।

इंसान का घर उसका मस्कन है और मस्कन की अस्ल ग़रज़ व ग़ायत सुकून व राहत हासिल करना है। अल्लाह तआला ने कुरआन अज़ीज़ में जहां अपनी इस नेअ़मते गिराँ माया का ज़िक्र फ़रमाया है उसमें इस तरफ़ इशारा फ़रमाया है– "وَاللّٰهُ جَعَلَ لَكُمْ مِنْ بُيُوْتِكُمْ سَكَنًا، (النحل)" यानी अल्लाह तआला ने तुम्हारे घरों में तुम्हारे सुकून व राहत का सामान दिया। और ये सुकून व राहत जब ही बाक़ी रह सकती है कि इंसान दूसरे किसी शख़्स की मुदाख़लत के बग़ैर अपने घर में अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ अज़ादी से काम अंजाम दे और अराम कर सके। उसकी आज़ादी में ख़लल डालना घर की अस्ल मस्लिहत को फ़ौत करना है और इज़ा देना और तकलीफ़ पहुंचाना है। इस्लाम ने किसी को भी नाहक़ तकलीफ़ देना हराम क़रार दिया है। इजाज़त के अहकाम में एक बड़ी मस्लिहत लोगों की आज़ादी में ख़लल डालने और उनकी ईज़ा रसानी से बचना है जो हर शरीफ़ आदमी का अक़्ली फ़रीज़ा है।

(2) दूसरी मस्लिहत ख़ुद उस शख़्स की है जो किसी से भी मुलाक़ात के लिए गया हो, जब वह इजाज़त लेकर शाइस्ता इंसान की तरह मिलेगा तो मुख़ातब भी उसकी बात क़द्र व मंज़िलत से सुनेगा, और अगर उसकी कोई ज़रूरत है तो उसको पूरा करने का दाइया उसके दल में पैदा होगा। उसके बर ख़िलाफ़ अचानक पहुंचने से साहबे ख़ाना उसको बलाए (मुसीबत) नागहानी समझ कर दफ़उलवक़्ती से काम लेगा अगर ख़ैर ख़्वाही का दाइया हुआ भी तो

वह मुंज़्महिल हो जाएगा और आने वाले को ईज़ाए मुस्लिम का गुनाह अलग होगा।

(3) तीसरी मस्लिहत फ़्वाहिश व बेहयाई का इंसिदाद है। बग़ैर इजाज़त किसी के मकान में दाख़िल हो जाने से ये भी एहतिमाल है कि ग़ैर महरम औरतों पर नज़र पड़े और शैतान दिल में ग़लत वस्वसा पैदा कर दे। इसी मस्लिहत से अहकामे इस्तीज़ान को कुरआन में हद्दे ज़िना, हद्दे क़ज़फ़ वग़ैरा के अहकाम के मुत्तसिल ही ज़िक्र फ़रमाया गया है।

(4) ज़रा ग़ौर किया जाए तो बेहतर यही मालूम होता है कि बिला इजाज़त और अचानक किसी के घर में नहीं पहुंचना चाहिए। क्योंकि बाज़ औक़ात इंसान अपने घर की तन्हाई में किसी ऐसे काम में मशगूल होता है जिससे दूसरों को मुत्तला करना मुनासिब नहीं समझता। तो ऐसे वक़्त में कोई शख़्स वहां पर अचानक आ पहुंचे तो घर वाले को इससे बड़ी कोफ़्त और अज़ीयत होती है। और तबीअ़त में एक क़िस्म का इंक़िबाज़ पैदा होता है। इसी तरह दूसरों को भी अपने ऊपर क़यास करना चाहिए कि ख़ुदा मालूम वह उस वक़्त किसी ऐसे ज़रूरी काम में मशगूल हों जिसकी किसी को ख़बर करना मुनासिब न समझते हों। तो हमारा उसके पास यकायक पहुंचना उतना ही शाक़ गुज़रेगा जैसे कि ऐसे मौक़ा पर हम को नागवार गुज़रता है। इंसान जिन चीज़ों को पोशीदा रखना चाहता था दूसरों के अचानक पहुंचने से वह राज़ पोशीदा नहीं रहेगा और ये ज़ाहिर है कि ज़बरदस्ती किसी का राज़ मालूम करना गुनाह है। जो दूसरों के लिए मूजिबे ईज़ा

रसानी है और ईज़ाए मुस्लिम गुनाह है।

(5) बाज़ मरतबा ऐसी हालत में बिला इत्तिला दाख़िल हो जाने वाले पर गुस्सा भी आ जाता है और ज़बान से सख़्त व सुस्त जुमले भी निकल जाते हैं और कभी बेख़बरी में घुस आने वाले के लिए ज़बान से बददुआ भी निकल जाती है, आने वाले ने नाहक़ उसके नाक़ाबिले इज़हार उमूर में मुदाख़लत की जो उसके लिए नागवारी और अज़ीयत का सबब हुआ, क्योंकि साहबे ख़ाना इस हालत में मज़लूम की हैसियत रखता है और मज़लूम की बददुआ बहुत जल्द क़बूल होती है। बुख़ारी की हदीस है—

اِتَّقِ دَعْوَةَ الْمَظْلُومِ فَإِنَّهُ لَيْسَ بَيْنَهُ وَبَيْنَ اللّٰهِ حِجَابٌ

तर्जुमा: मज़लूम की बददुआ से डरो, क्योंकि उसके और अल्लाह के दरमियान कोई हिजाब नहीं।

(6) बाज़ मरतबा ऐसा भी होता है कि आदमी जब किसी जगह तन्हा होता है तो लिबास की दुरुस्तगी और बदन छुपाने में चंदां एहतियात नहीं किया करता, तो ऐसे वक़्त बेख़बरी में कोई आ जाए तो उस शख़्स को बड़ी नदामत उठानी पड़ती है, और आने वाले को भी निहायत शरमिंदगी लाहिक़ होती है।

(7) इंसान की तबीअत कुछ इस तरह वाक़ेअ हुई है कि जब वह तन्हाई में बैठा हो तो किसी ख़्याल में मह्व होता है। अगर ऐसी हालत में अचानक कोई उसके पास पहुंच जए तो वह चौंक पड़ता है, उस पर एक क़िस्म का तवह्हुश (वह्शत, डर) तारी हो जाता है। जिससे उसके दिल व दिमाग़ को दफ़अ़तन सदमा पहुंचता है और मोमिन अल्लाह की दरगाह में बड़ा इज़्ज़तदार है। उसको अज़ीयत

दिही और तकलीफ़ रसानी बड़ा गुनाह है। इसलिए ज़रूरी हुआ कि उसको पहले बाहर से इस तरह इत्तिला दी जाए कि जो मुहब्बत व तअ़ल्लुक़ का पहलू लिए हुए हो और इस क़दर मुहब्बत आमेज़ हो जिससे तवह्हुश दूर हो जाए और वह मुहब्बत व उन्स के साथ इजाज़त दे दे और अचानक आना नागवारे ख़ातिर न हो। अलग़रज़ ये थोड़े से वह उसूल हैं जिनके ऊपर हम अमल पैरा हो कर अपने मुआ़शरा को एक मिसाली मुआ़शरा बना सकते हैं, जिसमें सिर्फ़ राहत व आराम और चैन व सुकून ही होगा। इनके बग़ैर हम मुआ़शरा में सुकून पैदा नहीं कर सकते और परेशानियों के अंबार में घिरे रहेंगे जो हमें किसी भी वक़्त चैन से नहीं रहने देंगी।

उन्स हासिल करने के फ़ाएदे

आयते कुरआनी में जो बतलाया गया है वह–

"حَتّٰى تَسْتَاْنِسُوْا وَتُسَلِّمُوْا عَلٰۤى اَهْلِهَا. الآية"

यानी किसी के घर में उस वक़्त तक दाख़िल न हो जब तक दो काम न कर लो। अव्वल इस्तीनास (इजाज़त) दूसरे सलाम। इस्तीनास के लफ़्ज़ी माना उन्स के हैं। जमहूर मुफ़स्सिरीन के नज़दीक इससे मुराद इस्तीज़ान यानी इजाज़त हासिल करना है। दरहक़ीक़त दोनों लफ़्ज़ों में एक लतीफ़ फ़र्क़ है जिसको नज़र अंदाज़ नहीं करना चाहिए। अगर "حَتّٰى تَسْتَاْذِنُوْا" फ़रमाया जाता तो आयते मुबारका के माना ये होते कि लोगों के घरों में ना दाख़िल हो जब तक तुम इजाज़त न ले लो। इस तर्ज़े ताबीर को छोड़ कर अल्लाह तआ़ला ने "تَسْتَاْنِسُوْا" के अलफ़ाज़ इस्तेमाल फ़रमाए हैं। इजाज़त को अरबी ज़बान में "اِذْنٌ"

कहते हैं। जिससे इजाज़त लेने के माना में "اِسْتِئْذَانٌ" बनता है और "اِسْتِيْنَاسٌ" (इजाज़त तलब करना) जिससे "تَسْتَاْنِسُوْا" का लफ़्ज़ लिया गया है। जिसका माद्दा उन्स है जो कि उर्दू ज़बान में भी इसी माना में इस्तेमाल होता है। "تَسْتَاْنِسُوْا" अगरचे इजाज़त लेने के माना में इस्तेमाल होता है। मगर ये माना उसके हक़ीक़ी और ख़ास उसी लफ़्ज़ के नहीं हैं, बल्कि उसके माना तो उन्स चाहना, उन्स मालूम करना या अपने से मानूस करना है लेकिन अल्लाह तआला ने "اِسْتِئْذَانٌ" की जगह "اِسْتِيْنَاسٌ" इस्तेमाल फ़रमाया है और बजाए "تَسْتَاْذِنُوْا" के "تَسْتَاْنِسُوْا" के लफ़्ज़ को इख़्तियार फ़रमाया है हालांकि इस माना के लिए बज़ाहिर पहला लफ़्ज़ ज़्यादा मौज़ूँ था। मगर ऐसा इसलिए किया गया कि "اِسْتِيْنَاسٌ" ज़्यादा फ़वाइद पर मुश्तमल है।

"اِسْتِيْنَاسٌ" ''उन्स'' से मुश्तक़ है जिसका मक़सद उन्स हासिल करना और वह्शत दूर करना है। तालिबे इजाज़त आम तौर पर इजाज़त से क़ब्ल वह्शत में मुब्तला होता है कि इजाज़त मिलती है या नहीं, हुसूले इजाज़त उसकी वह्शत के इज़ाला का मूजिब है इसलिए ये लफ़्ज़ "تَسْتَاْنِسُوْا" इस्तेमाल किया गया है।

हमारी ज़बान में वह्शी उन जानवरों के लिए इस्तेमाल होता है जो इंसान से मानूस नहीं होते और आदमियों से घबराते हैं। जो जानवर लोगों से घबराते नहीं हैं, बल्कि मानूस होते हैं उन्हें पालतू कहते हैं। तो ये लफ़्ज़ मोहलत, इजाज़त, आराम, मुहब्बत वगैरा तलब करने के लिए भी बोला जाता है। चूंकि तअ़ल्लुक़ आराम का सबब है, इसलिए

तअ़ल्लुक़ का तलब करना बऐनिही आराम का तलब करना भी हो सकता है। ऐसे ही मोहलत व इजाज़त के लिए भी तअ़ल्लुक़ ज़रूरी है और बग़ैर तअ़ल्लुक़ के ये ग़ैर मुम्किन है। नीज़ इस लफ़्ज़ के इख़्तियार करने से ये भी मालूम हुआ कि मक़सूद तवह्हुश (अजनबीयत) का दफ़ा करना है और अपनी आमद की इत्तिला देना है, जिस तरह भी हासिल हो जाए।

(अलमुन्जिद, अलक़ामूसुलजदीद, जलालैन)

दस्तक का शरई हुक्म

जो लोग इस ज़माने में इजाज़त हासिल करने में सुन्नत पर अमल करना चाहें तो मसनून तरीक़ा ये है कि घर के दरवाज़ा पर पहंच कर बाहर से सलाम करे, फिर अपना नाम बतला कर इजाज़त तलब करे, आज कल इस ज़माने में इजाज़त तलब करने में कभी बाज़ दुश्वारियां पेश आती हैं, क्योंकि जिससे इजाज़त हासिल करना हो वह दरवाज़ा से दूर होता है। वहां तक सलाम की आवाज़ और इजाज़त के अलफ़ाज़ पहुंचना मुश्किल होते हैं।

इजाज़त लेने के तरीक़े हर ज़माना में और हर मुल्क में मुख़्तलिफ़ हो सकते हैं। ज़बान ही की खुसूसियत नहीं। उनमें से एक तरीक़ा दरवाज़ा पर दस्तक देना है। रिवायात व अहादीस से साबित है, लेकिन दस्तक हो तो इतनी ज़ोर से न हो कि मुख़ातब घबरा उठे और उस पर वह्शत (डर) तारी हो जाए। मुतवस्सित अंदाज़ से दस्तक दी जाए जिससे अन्दर आवाज़ तो पहुंच जाए मगर किसी हंगामी हालत का इज़हार न हो। चुनांचे दरबारे नबवी (स.अ.व.) के मुतअल्लिक़ इरशाद है--

”عَنْ اَنَسِ بْنِ مَالِكٍ اَنَّ اَبْوَابَ النَّبِيِّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ تُقْرَعُ بِالْاَظَافِيْرِ (الحديث)

तर्जुमा: हज़रत अनस (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के दरवाज़े नाख़ुनों से खटखटाये जाते थे। इससे मालूम हुआ कि इजाज़त के लिए ज़बान से कहना शर्त नहीं है, बल्कि और तरह भी हो सकती है। दुसरे ये कि इजाज़त से वह्शत व तकलीफ़ का सद्देबाब मक़सूद है जो तलबे इजाज़त का ख़ास सबब है।

मुफ़्ती शफ़ीअ़ साहब (रह.) की तहक़ीक़

मुन्दरजा बाला मस्अला के बारे में मुफ़्ती साहब (रह.) की तहक़ीक़ ये है कि अगर किसी के यहां घंटी के ज़रीए इत्तिला करने का तरीक़ा राइज हो तो आने वाले पर उसका बजाना ही वाजिब है और ये इस्तीज़ान की अदाएगी के लिए काफ़ी हो जाएगा। मगर सुन्नत जब ही होगा कि घंटी के बाद अपना नाम भी ऐसी आवाज़ से ज़ाहिर कर दे जिसको मुख़ातब सुन ले, इसके अलावा और कोई तरीक़ा जो किसी जगह राइज हो उसको इख़्तियार करना भी जाइज़ है, मसलन आज कल शनाख़्ती कार्ड जो यूरोप से चला है ये रस्म अगरचे अह्ले यूरोप ने जारी की है। मगर मक़सद इससे भी इजाज़त तलब करना और अपना नाम बताना होता है। कोई शुब्हा नहीं कि इससे भी तलबे इजाज़त का काम पूरा हो जाता है। इजाज़त देने वाले को इजाज़त चाहने वाले को पूरा नाम और पता अपनी जगह पर बैठे बिठाए बग़ैर किसी तकलीफ़ व तकल्लुफ़ के मालूम हो जाता है। इसलिए इसको इख़्तियार करने में कोई मुज़ाएक़ा नहीं।

एक एतेराज़ और उसका जवाब

आयते मज़्कूरा में– "يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا" से ख़िताब किया गया है, जो मर्दों के लिए इस्तेला होता है। कुरआन करीम में अक्सर अहकाम मर्दों को मुख़ातब कर के नाज़िल हुए हैं या मर्दों के हक़ में उनका नुज़ूल हुआ है, मगर औरतें भी इस हुक्म में दाख़िल हैं, जैसा कि आ़म अहकामे कुरआनी का अंदाज़ यही है, मगर आ़म तौर पर इन तमाम में औरतें भी शामिल हैं। बजुज़ मख़सूस मसाइल के जो मर्दों के साथ मख़्सूस हैं। इसी तरह मज़्कूरा आयत में औरतें भी ज़िमनन दाख़िल हैं।

सहाबियात (रज़ि.) का दस्तूर

आ़म तौर से जाहिल तो जाहिल, लिखी पढ़ी औरतें भी समझती हैं कि औरतों को औरतों से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं, बग़ैर किसी इजाज़त के घर में बिला रोक टोक चली आती हैं, कोई गुनाह या कोई बुराई नहीं समझतीं, हालांकि उसकी वजह से बाज़ मरतबा किसी बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता है। अह्दे सहाबा (रज़ि.) में उनकी औरतों का तआ़मुल ये था कि जब वह किसी के घर जाती थीं तो पहले इजाज़त चाहतीं फिर दाख़िल होती थीं।

रिवायत: हज़रत उम्मे यास (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि हम चार औरतें अक्सर हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास जाया करती थीं और घर में जाने से पहले उनसे इजाज़त तलब करती थीं। जब आप इजाज़त दे देतीं तो हम अन्दर दाख़िल होतीं।

रिवायत: है कि हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास चार

औरतें गईं और इजाज़त तलब की कि क्या हम आ सकती हैं? आप (रज़ि.) ने फ़रमाया नहीं तुम में से जो इजाज़त का तरीक़ा जानती हो कह दो कि वह इजाज़त तलब करे, एक औरत ने पहले सलाम किया फिर इजाज़त चाही। हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने इजाज़त दे दी फिर हज़रत आइशा (रज़ि.) ने आयत पढ़ कर सुनाई–

"لَاتَدْخُلُوْا بُيُوْتاً غَيْرَ بُيُوْتِكُمْ" الآية

आयत का उमूम

तो आयत के उमूम और सहाबियात (रज़ि.) के अमल से मालूम हुआ कि किसी के घर जाने से पहले इस्तीज़ान का हुक्म आ़म है। मर्द व औरत, महरम, ग़ैर महरम सब को शामिल है। मसलन औरत किसी के घर जाए या मर्द किसी के मकान में जाए सब को इजाज़त तलब करना वाजिब है। इसी तरह अगर मर्द अपनी माँ, बहन या किसी दूसरी महरम औरत के यहां जाए, तो भी इजाज़त हासिल कर के जाना चाहिए।

एक शुब्हा का इज़ाला

आयते मज़कूरा में "بُيُوْتاً غَيْرَ بُيُوْتِكُمْ" है...... तो अपना घर कौन सा है, और अपने घर से क्या मुराद है और दूसरों का घर कौन कहलाएगा?

इसको पहले समझ लेना चाहिए कि आदमी के जिस क़दर रिश्तादार होते हैं जिनके घरों के लिए अपना घर होने का शुब्हा हो सकता है। उसके बाद अपने घर होने का तअैयुन होगा।

आदमी के रिश्तादार या तो उसके अस्ल से तअ़ल्लुक़ रखते हैं यानी जिनसे ये पैदा हुआ है। जैसे माँ बाप,

दादा, दादी चुनांचे इनमें सब से ज़्यादा क़रीब उसके हक़ीक़ी माँ बाप हैं। दूसरा रिश्ता फ़ुरूअ़ का है, यानी जो उससे पैदा हुए हैं। जैसे औलाद और औलाद की औलाद इनमें सब से ज़्यादा क़रीब सुल्बी औलाद होती है या बराबर के रिश्तादार हैं, जिनमें सब से ज़्यादा क़रीब हक़ीक़ी बहन भाई हैं, या ससुराली रिश्तादार हैं, इनमें सब से ज़्यादा क़रीब का रिश्ता बीवी का है।

हर एक का अलाहिदा अलाहिदा हुक्म

अब हर एक के लिए अहकाम सुन लिए जायें और अपने और ग़ैर के घर का अंदाज़ा कर लिया जाए।

"يَسْتَأْذِنُ الرَّجُلُ عَلٰى اَبِيْهِ وَاَخِيْهِ وَاُخْتِهٖ (الادب المفرد)

आदमी को अपने बाप, भाई और बहन से इजाज़त लेना चाहिए। तो इससे मालूम हुआ कि भाई व बहन और वालिद का मकान इस तरह अपना मकान नहीं समझा जाता कि वहां इजाज़त की ज़रूरत न हो।

ख़ास लोगों के लिए तलबे इजाज़त

यहां से ये भी मालूम हुआ कि जिस तरह एक शख़्स को अपने बाप, भाई और बहन के घर में आने के लिए इजाज़त लेने की ज़रूरत है। उसी तरह जब लोग अपनी औलाद और छोटों के यहां आयें तो उनको भी उनके घरों में आने के लिए इजाज़त हासिल करना ज़रूरी है। इसकी वजह ज़ाहिर है कि मक़्सद दोनों जगह ख़बर देना और फिर हाज़िर होना है।

जिस बुनियाद पर बाप से बेटे को इजाज़त लेना पड़ती है उसी तरह बाप को भी अपने छोटों से इजाज़त हासिल करना चाहिए। अब रिश्तादारों की फ़ेहरिस्त में से औलाद,

बाप, भाई, बहन, निकाल देने के बाद सिर्फ़ माँ और बीवी बाक़ी रह गई हैं। जिनका तज़किरा तफ़सील से अहादीस में आया है।

बार बार सवाल करना

मुवत्ता इमाम मालिक (रह.) में मुरसलन रिवायत है–

"عَنْ عَطَاءِ بْنِ يَسَارٍ أَنَّ رَجُلاً سَأَلَ رَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ فَقَالَ أَأَسْتَأْذِنُ عَلٰى أُمِّيْ فَقَالَ نَعَمْ، فَقَالَ الرَّجُلُ إِنِّيْ مَعَهَا فِي الْبَيْتِ فَقَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ اِسْتَأْذِنْ عَلَيْهَا. فَقَالَ الرَّجُلُ إِنِّيْ خَادِمُهَا. فَقَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ. اِسْتَأْذِنْ أَتُحِبُّ أَنْ تَرَاهَا عُرْيَانِيَةً قَالَ لَا قَالَ فَاسْتَأْذِنْ عَلَيْهَا. (اَلْحَدِيْثُ)

अता (रज़ि.) इब्न यसार से मरवी है कि एक शख़्स ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से सवाल किया, क्या मुझ को अपनी माँ से भी इजाज़त लेनी चाहिए? आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया बेशक! फिर उसने सवाल किया कि मैं तो उनके साथ एक ही घर में रहता हूं। इरशाद फ़रमाया– इजाज़त उनसे भी लिया करो, उस शख़्स ने मज़ीद कहा कि मैं तो उनका ख़ादिम हूं, बार बार इसलिए सवाल किया था कि शायद कोई छुटकारे का पहलू मिल जाए। आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया इजाज़त लिया करो, क्या तुम को ये पसंद है कि तुम अपनी माँ को बरहना देखो। उसने कहा नहीं, इरशाद फ़रमाया– इसीलिए तो इजाज़त ले कर उनके पास जाया करो (कि आदमी तन्हाई में मुख़ल्ला बित्तबअ़ होता है।

हज़रत इब्न मसऊद (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि अपनी माओं और बहनों के पास जाने के लिए भी इजाज़त लेना ज़रूरी है। एक मरतबा हज़रत अता (रज़ि.) ने हज़रत

इब्न अब्बास (रज़ि.) से दरयाफ़्त किया, मेरी बहन मेरे ज़ेरे परवरिश एक ही मकान में मेरे साथ मुक़ीम हैं। क्या ऐसी सूरत में भी मुझे घर में दाख़िल होने के लिए इजाज़त लेनी ज़रूरी है। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) ने फ़रमाया– जी हां! हज़रत अता (रज़ि.) ने दोबारा सवाल किया मगर फिर भी वही जवाब मिला। तीसरी मरतबा सवाल पर हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) ने फ़रमाया– क्या तुम उनको बरहना देखना पसंद करते हो। हज़रत अता ने इन्कार किया। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) ने फ़मरया कि इसीलिए तो इजाज़त लेना ज़रूरी है कि पता नहीं किस हालत में हो।

हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि.) से दरयाफ़्त किया गया। क्या माँ की ख़िदमत में हाज़िर होने के लिए भी इजाज़त तलब करना ज़रूरी है। फ़रमाया– हां! अगर इजाज़त न मांगेगा तो हो सकता है कि उनको ऐसे हाल में देखे जो माँ को नागवार हो और ये माँ को तकलीफ़ पहुंचाना है और ये मुसल्लम है कि किसी मुसमलान को अज़ीयत देना दुरुस्त नहीं।

मुन्दरजा बाला अहादीस व रिवायत से मालूम हुआ कि जिस मकान में माँ और बहन साथ मुक़ीम हों तो वह मकान भी इस हुक्म में आता है। इसलिए वहां भी इजाज़त लेना ज़रूरी होगा।

अपने घर की तारीफ़

अब तमाम अइज़्ज़ा की फ़ेहरिस्त में से सिर्फ़ बीवी का हुक्म बाक़ी रह जाता है। उसके पास बिला इजाज़त जाना जाइज़ है। और वह घर जिसमें इंसान सिर्फ़ बीवी के साथ रहता हो वह घर अपना घर कहलाएगा। इसके

अलावा और घरों के लिए इजाज़त लेना ज़रूरी है। अगर बीवी वाले घर में कोई और भी मुक़ीम हो या कोई मेहमान आया हुआ हो तो मकान उसकी तरफ़ मन्सूब हो जाएगा चाहे वह मकान उसी का क्यों न हो, तो अपना घर भी उस वक़्त इजाज़त से बरी न होगा। वहां पर भी बग़ैर इजाज़त दाख़िल होना ममनूअ़ होगा। तो अपने मकान से वह मकान मुराद है जिसमें आदमी तन्हा ख़ुद हो या सिर्फ़ बीवी के साथ रहता हो। ख़्वाह वह मकान अपनी मिल्क में हो या किराया का हो या यूं ही आरयतन हो। अगर किराया का या मांगे का मकान है तब भी वह मकान रहने वाले का ही कहलाएगा अस्ल मालिक को बग़ैर इजाज़त के दाख़िल होना जाइज़ नहीं है।

अपने घर में आने का मसनून तरीक़ा

जिस घर में सिर्फ़ अपनी बीवी रहती हो। उसमें दाख़िल होने के लिए अगरचे इजाज़त वाजिब नहीं है, मगर मुस्तहब तरीक़ा ये है कि वहां पर भी अचानक बग़ैर किसी इत्तिला के अन्दर न जाए, बल्कि दाख़िल होने से क़ब्ल अपने पाँव की आहट से, या खंकार से, या किसी और तरीक़ा से पहले बाख़बर कर दे फिर दाख़िल हो।

हज़रत अता (रज़ि.) से मालूम किया गया कि बीवी के पास भी बग़ैर इजाज़त न जाया जाए? फ़रमाया– कि वहां इजाज़त की ज़रूरत नहीं है। इब्न कसीर ने इस रिवायत को नक़्ल कर के फ़रमाया इससे मुराद यही है कि इजाज़त वाजिब नहीं, लेकिन मुस्तहब और औला वहां पर भी है। अपने घर में बीवी से इजाज़त चाहने की ज़रूरत तो नहीं है, लेकिन इत्तिला ज़रूर होनी चाहिए।

मुम्किन है कि वह ऐसी हालत में हो कि वह नहीं चाहती कि ख़ाविंद उसको उस हालत में देखे। मसलन बाज़ बातें औरतों को नहाने धोने में ख़ाविंद के रूबरू करने में बुरी मालूम होती हैं और ख़ाविंद के लिए भी ऐसी हालत में निगाह पड़ने पर बाइसे नफ़रत होने का अंदेशा है।

इन अहादीस व रिवायात से ये मालूम हो गया कि इजाज़त के अस्बाब जहां पर और हैं वहां पर एक एहतेमाल बरहनगी का भी है। हो सकता है वह शख़्स जिसके पास ये जा रहा है उस वक़्त बरहना हो। इससे ये बात मालूम हुई कि जिसका सत्र देखना जाइज़ नहीं वहां पर इजाज़त की ज़रूरत है। और जिसका सत्र देखना जाइज़ है वहां पर इजाज़त की ज़रूरत नहीं। और वह मकान जिसमें सिर्फ़ बीवी रहती हो और ग़ैर के आने का इम्कान न हो तो उसको इजाज़त की ज़रूरत नहीं। और अगर आने का इम्कान क़वी हो तो तलबे इजाज़त वहां पर भी ज़रूरी है। ये बताना भी ज़रूरी है कि बीवी का सत्र देखना जाइज़ तो है, लेकिन नामुनासिब है। हज़रत आइशा (रज़ि.) की एक हदीस का मफ़हूम है कि हम ने ज़िन्दगी भर एक दूसरे का सत्र नहीं देखा।

हज़रत ज़ैनब फ़रमाती हैं कि मेरे ख़ाविंद हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि.) जब मेरे पास घर में आते थे तो खंकार के आते थे और कभी बुलंद आवाज़ से दरवाज़े के बाहर किसी से बातें करने लगते थे, ताकि घर वालों को आपके आने की इत्तिला हो जाए।

इमाम अहमद (रह.) ने इसीलिए सराहत की है कि अपने घर में दाख़िल होते वक़्त खंकारना या पाँव की

आवाज़ पैदा करना मुस्तहब है।

(इब्न जरीर व इब्न कसीर)

हज़रत मुजाहिद ने आम मुफ़स्सिरीन के बरख़िलाफ़ "تَسْتَأْنِسُ" के ये माना भी किए हैं कि खंकारना, तहज़ीब के साथ थूकना, दरवाज़ा की कुंडी हल्के से बजाना और नर्मी के साथ बात करना, पांव की आहट पैदा करना, या कोई ऐसा मुनासिब ज़रीआ इस्तेमाल करना जिससे साहबे ख़ाना को इत्तिला हो जाए ये सब "اِسْتِيْنَاسْ" के ज़ैल में आते हैं।

हज़रत मुजाहिद की दलील मुन्दरजा ज़ैल है–

"اَخْرَجَ اِبْنُ حَاتِمٍ عَنْ اَبِى سَوْرَةَ ابْنِ اَخِىْ اَبِىْ اَيُّوْبَ قَالَ قُلْتُ يَارَسُوْلَ اللّٰهِ. هٰذَا سَلَامٌ فَمَا الْاِسْتِيْنَاسُ. قَالَ يَتَكَلَّمُ الرَّجُلُ بِتَسْبِيْحَةٍ، و تَكْبِيْرَةٍ، وَتَحْمِيْدَةٍ، وَيَتَنَحْنَحُ فَيُؤْذِنُ اَهْلَ الْبَيْتِ اَلْحَدِيْثُ" (تفسير ابن كثير)

तर्जुमाः आंहज़रत (स.अ.व.) से सवाल किया गया कि सलाम तो हम जानते हैं लेकिन इस्तीनास का तरीक़ा क्या है। आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया–

سبحان الله या الحمدلله या الله اكبر बुलंद आवाज़ से कह देना, या खंकारना कि जिससे घर वाले समझ जायें कि कोई अन्दर आ रहा है।

इजाज़त के लिए खड़े होने का मसनून तरीक़ा

और जिस मकान पर हुसूले इजाज़त के लिए जाएँ तो इस तरह खड़ा होना चाहिए कि दरवाज़ा के अन्दर का सामना न हो, ताकि इजाज़त का मक़्सद भी हासिल हो जाए और बेपरदगी की ख़राबियों से हिफ़ाज़त भी हो जाए।

हज़रत अब्बदुल्लाह इब्न बशर (रज़ि.) की रिवायत है–

"اِذَا اَتٰی بَا باً یُرِیْدُ اَنْ یَّسْتَاْذِنَ لَمْ یَسْتَقْبِلْهُ جَاءَ یَمِیْناً وَ
شِمَالاً فَاِنْ اُذِنَ..........وَاِلَّا انْصَرِفْ.......... (ادب المفرد)

तर्जुमाः जब आदमी किसी के दरवाज़े पर इजाज़त लेने के लिए आए तो दरवाज़ा के आमने सामने से न आए बल्कि दाहिनी जानिब या बाईं जानिब से आए अगर इजाज़त मिल जाए तो बेहतर वरना लौट जाए।

अबूदाऊद की एक रिवायत में है। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) जब किसी के मकान पर तशरीफ़ ले जाते थे, तो उसके दरवाज़े के बिल्कुल सामने न खड़े होते थे, बल्कि एक जानिब खड़े हो कर ज़ोर से सलाम करते।

ऐन दरवाज़े पर खड़े होने से इसलिए भी इज्तिनाब फ़रमाते थे कि अव्वल तो उस ज़माना में दरवाज़ों पर परदों का रिवाज नहीं था, अगर परदा भी होता तो भी उसके खुल जाने का एहतेमाल बाक़ी रहता था।

दरवाज़ों के सामने खड़े हो कर एक शख़्स ने आंहज़रत (स.अ.व.) से इजाज़त मांगी तो आपने उसको ये तालीम दी कि इस तरह दरवाज़ा पर खड़े होना चाहिए कि अन्दर निगाह न जाने पाए। क्योंकि इजाज़त का मक़्सद यही है कि अचानक किसी पर नज़र न पड़े।

हज़रत उमर (रज़ि.) का वाक़िआ

हज़रत उमर (रज़ि.) एक मरतबा रात में गश्त फ़रमा रहे थे, एक शख़्स की आवाज़ सुनी कि वह गा रहा है। आपको शक गुज़रा, दीवार पर चढ़ गए, देखा वहां पर शराब भी मौजूद है और औरत भी है, आप ने पुकार कर कहा– ऐ दुश्मने ख़ुदा क्या तूने ये समझ रखा है कि तू अल्लाह की नाफ़रमानी करेगा और अल्लाह तेरा परदा

फ़ाश नहीं करेगा। उसने जवाब दिया ऐ अमीरुलमोमिनीन जलदी न कीजिएगा, अगर मैंने एक गुनाह किया तो आप ने तीन गुनाह किए हैं। (1) अल्लाह ने तजस्सुस को मना फ़रमाया है। "وَلَا تَجَسَّسُوا" (2) घर में दरवाज़ा से आने का हुक्म दिया गया है। "وَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ اَبْوَابِهَا" (3) अल्लाह ने हुक्म दिया है कि अपने घरों के अलावा दूसरे घरों में इजाज़त के बग़ैर मत जाओ। "لَا تَدْخُلُوا بُيُوْتًا غَيْرَ بُيُوْتِكُمْ" आप मेरी इजाज़त के बग़ैर मेरे घर में आए हैं। ये जवाब सुन कर हज़रत उमर (रज़ि.) ने अपनी ग़लती का एतेराफ़ कर लिया और उसके ख़िलाफ़ कोई कारवाई नहीं की अलबत्ता उससे ये वादा ले लिया कि भलाई की राह इख़्तियार करेगा।

घर में झांकने की मुमानअ़त

इजाज़त की एक मसलिहत ये भी है कि दूसरा आदमी जो चीज़ आप पर ज़ाहिर करना नहीं चाहता है, आप उस पर किसी तरह बाख़बर न हों, अगर पहले ही घर में झांक लिया तो ये मसलिहत ख़त्म हो जाएगी। अहादीस शरीफ़ा में इसकी सख़्त मुमानअ़त आई है।

हज़रत अनस (रज़ि.) ख़ादिमे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) फ़रमाते हैं–

एक शख़्स ने आंहज़रत (स.अ.व.) के हुजरए मुबारक में बाहर से झांका, हुज़ूर (स.अ.व.) उस वक़्त एक तीर हाथ में लिए हुए थे, आप उसकी तरफ़ बढ़े कि गोया कि उसके पेट में भोंक देंगे।

हदीस शरीफ़ में है–

"لَا يَحِلُّ لِامْرِءٍ مُسْلِمٍ اَنْ يَنْظُرَ اِلٰى جَوْفِ بَيْتٍ حَتّٰى

يَسْتَأْذِنَ فَإِنْ فَعَلَ فَقَدْ دَخَلَ" (رواه البخارى و المسلم)

क़िसी मुसलमान के लिए जाइज़ नहीं है कि बग़ैर इजाज़त किसी के घर में झांके, अगर उसने ऐसा किया तो गोया वह दाख़िल ही हो गया।

इन अहादीस से ज़ाहिर है कि शरीअ़ते मुतह्हरा में झांकने की सख़्त मुमानअ़त है।

फ़ारूक़े आज़म (रज़ि.) का फ़तवा

"عَنْ عُمَرَ بْنِ الْخَطَّابِ مَنْ مَّلأَ عَيْنَيْهِ مِنْ قَاعَةِ بَيْتٍ قَبْلَ اَنْ يُّؤْذَنَ لَهُ فَقَدْ فَسَقَ"

उमर इब्न ख़त्ताब (रज़ि.) से रिवायत है कि जिस ने इजाज़त से पहले सेहने मकान को नज़र भर कर देखा तो उसने नाफ़रमानी का इरतिकाब किया।

मालूम हुआ कि बग़ैर इजाज़त किसी के घर में झांकना भी दुरुस्त नहीं। बल्कि इसका तरीक़ा ये है कि अगर दरवाज़ा खुला हुआ हो या घर के अन्दर का सामना हो रहा हो तो उसके सामने न खड़ा हो। अगर ऐसा किया गया तो हज़रत फ़ारूक़े आज़म (रज़ि.) के फ़तवा के मुताबिक़ वह फ़ासिक़ क़रार पाएगा।

"عَنْ اَبِىْ هُرَيْرَةَ. اَنَّ رَسُوْلَ اللّٰهِ قَالَ اِذَا دَخَلَ الْبَصَرُ فَلا اِذْنَ لَهُ"

अबूहुरैरा (रज़ि.) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि जब किसी के घर में नज़र पहुंच जाए तो उसको इजाज़त का इस्तेहक़ाक़ न रहा। गोया उसने इस्लामी क़ाएदा की ख़िलाफ़ वरज़ी की और अपने को गुनहगार बनाया।

आँख फोड़ने का मसअला

किसी के घर में झांकने वाले के लिए सख़्त वईद

फ़रमाई गई है।

"لَوْ اَنَّ اِمْرَءً اِطَّلَعَ عَلَيْکَ بِغَيْرِ اِذْنٍ فَقَذَفْتَهُ بِحِجَارَةٍ فَفَقَأْتَ عَيْنَهُ مَا كَانَ عَلَيْکَ مِنْ جُنَاحٍ" (اَلْحَدِيْث)

आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि अगर कोई तेरे घर में तेरी इजाज़त के बग़ैर झांकने लगे और तू उसको उसकी हरकत पर कंकर मारे जिससे उसकी आंख फूट जाए तो तुझ को कोई गुनाह नहीं है। गुनाह ग़ालिबन इसलिए नहीं होगा कि उसने बग़ैर इजाज़त व इत्तिला झांकने की इब्तिदा की और इस तरह घर की औरतों को देखने का इरादा किया था जो किसी बड़े फ़ितना का सबब भी हो सकता है। अगर वह अपनी आंख फूट जाने का मुक़द्दमा क़ाज़ी के पास ले जाएगा तो क़ाज़ी उसके हक़ में फ़ैसला न देगा और न कंकरी मारने वाले पर कोई आंख की दियत आएद करेगा।

इमाम शाफ़ई (रह.) का मस्लक ये है कि ऐसे शख़्स की आंख फोड़ देना जाइज़ है।

इमाम अबूहनीफ़ा (रह.) इसका मतलब ये लेते हैं कि यह हुक्म महज़ निगाह डालने की सूरत में नहीं है। बल्कि उस सूरत में है कि जब कोई शख़्स घर में बिला इजाज़त घुस आए और घर वालों के रोकने से बाज़ न आए और घर वाले उसकी मुज़ाहमत करें। इस कशमकश और मुज़ाहमत में उसकी आंख फूट जाए या किसी हिस्सा को नुक़्सान पहुंच जाए तो घर वालों पर कोई मुवाख़ज़ा नहीं होगा।

(अहकामुलकुरआन जस्सास)

अंधे की निगाह का हुक्म

फ़ुक़हा (रह.) ने निगाह के ही हुक्म में समाअ़त को

भी दाख़िल किया है। मसलन कोई नाबीना घर में बिला इजाज़त चला आए तो उसकी निगाह तो नहीं पड़ेगी मगर घर में जो परदा वाली औरतें हैं तो उनकी निगाह तो अंधे पर लाज़िमन पड़ेगी और फिर उसके कान घर वालों की बातें बिला इजाज़त सुनेंगे। ये चीज़ें भी नज़र की तरह तख़्लिया के हक़ में बेजा मुदाख़लत के हुक्म में हैं। इसी तरह अगर उस घर में नामहरम हैं तो ये उनको तो नहीं देख सकेगा मगर वह उसको देखेंगी ये भी उसी तरह गुनाह है जैसे ये उनको देखता।

हुज़ूर (स.अ.व.) ने इस हक़ को घर में दाख़िल होने के सवाल तक ही महदूद नहीं रखा, बल्कि उसको एक आम हक़ क़रार दिया है, जिसकी रू से दूसरे के घर में झांकना या बाहर से निगाह दौड़ाना यहां तक कि एक दूसरे के ख़ुतूत या ज़ाती काग़ज़ात पढ़ना भी ममनूअ़ क़रार दिया है।

अबूदाऊद की एक रिवायत में आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया—

"مَنْ نَظَرَفِیْ کِتَابِ اَخِیْهِ بِغَیْرِ اِذْنِهٖ فَاِنَّمَا یَنْظُرُفِی النَّارِ" الحدیث

जिसने अपने भाई की इजाज़त के बग़ैर उसके ख़त को देखा तो गोया उसने आग को देखा।

आज हमारा इस पर बिल्कुल अमल नहीं रहा, अगर डाकिया किसी को किसी का ख़त देता है तो वह उसको पढ़ लेता है। इसी तरह अगर किसी के हाथ आप कहीं परचा भेज रहे हैं तो वह पढ़ लिया जाता है और ये आदत हमारे मुआशरे में इस क़दर आम हो गई है कि हम को इसका एहसास तक बाक़ी नहीं रहा कि हम कोई बुरा काम कर रहे हैं। हालांकि ये सब चीज़ें उस वईद के

अन्दर दाख़िल हैं।

हदीस का अस्ल मक़सद और हमारे लिए ख़ास सबक़ ये है कि नफ़्सानी ख़्वाहिशात जो बज़ाहिर बड़ी लज़ीज़ और मरगूब मालूम होती हैं, हम जान लें कि इसका अंजाम दोज़ख़ का दर्दनाक अज़ाब है, जिसका एक लम्हा ज़िन्दगी भर के ऐश व आराम को भुला देगा और अहकामे इलाही की पाबंदी वाली ज़िन्दगी जिसमें हमारे लिए गिरानी और सख़्ती महसूस होती है उसका मुन्तहा जन्नत है। जिसमें हमेशा हमेशा के लिए बख़शिश व राहत का सामान है जिनकी दुनिया के किसी इंसान को हवा भी नहीं लगी होगी।

तलबे इजाज़त के साथ सलाम करना

आयत में दो चीज़ें मज़कूर हैं। तलबे इजाज़त और सलाम। सलाम तो इसलिए कि वह मुहब्बत पैदा करता है और वह्शत को दूर करता है।

"عَنِ النَّبِيِّ صلى الله عليه وسلم لَا تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ حَتّٰى تُؤْمِنُوْا وَلَا تُؤْمِنُوْا حَتّٰى تَحَابُّوْا. اَلَا اَدُلُّكُمْ عَلٰى مَا تَحَابُّوْنَ بِهٖ قَالُوْا بَلٰى يَارَسُوْلَ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ اَفْشُوا السَّلَامَ بَيْنَكُمْ"

आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि तुम लोग जन्नत में दाख़िल न होगे जब तक मोमिन न हो जाओगे। और मोमिन नहीं हो सकते जब तक कि आपस में मुहब्बत न रखोगे। क्या मैं तुम को ऐसी चीज़ न बताऊँ जिसके सबब तुम में मुहब्बत पैदा होती है। सहाबए किराम (रज़ि.) ने अर्ज़ किया ज़रूर या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) इरशाद फ़रमाया– आपस में सलाम करने का रिवाज दो।

घर वालों को भी सलाम का हुक्म फ़रमाया गया है।

उस वक़्त उस घर में जो भी मौजूद हों उन पर सलाम की एक मस्लिहत ये भी मालूम होती है कि आने वाले ने उसके मकान से फ़ाएदा उठाया है और "هَلْ جَزَاءُ الْإِحْسَانِ إِلَّا الْإِحْسَانُ" एहसान का बदला एहसान है। तो नफ़ा रसानी का एक ऐसा उसूल मुक़र्रर कर दिया जिस पर नादार, कम हैसियत शख़्स एक रईस के मुक़ाबला में इस्तेमाल कर सके तो मुख़्तसर और बेहतर नफ़ा रसानी जो हर एक के लिए मुयस्सर और कारआमद हो सके ये एक दुआ की तालीम फ़रमाई गई है। वह भी निहायत जामेअ़ मुख़्तसर, वह है "اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ" कि तुम पर ख़ुदा की रहमत और सलामती हो। "اَللّٰهُ اَكْبَرُ" किस क़दर जामेअ़ दुआ है अल्लाह तआ़ला तुम को तमाम बुरी चीज़ों, आफ़तों, बलाओं मुसीबतों और तकलीफ़ों से महफ़ूज़ व सलामत रखे। नीज़ इसलिए भी सलाम ज़रूरी मालूम होता है कि सुनने वाला आवाज़ वग़ैरा को कोई ख़ौफ़नाक चीज़ न समझे, उसकी वह्शत व घबराहट में इज़ाफ़ा न हो जाए। जब अपने लिए दुआए रहमत व सलामती सुनेगा तो इत्मीनान हो जाएगा, फिर अगर किसी नाक़ाबिले इज़्हार काम में लगा हुआ होगा तो उसका इंतिज़ाम कर के इजाज़त दे देगा, या अगर मिलना मंज़ूर न होगा तो इन्कार कर देगा। फिर ये कि आने वाला भी दुआए सलामती से महरूम न रहेगा। वह अपनी दुआए सलामती के जवाब में दूसरी तरफ़ से व अलैकुमुस्सलाम सुनेगा।

सलाम पहले या इजाज़त

हुसूले इजाज़त के लिए दो अमल ज़रूरी क़रार दिए हैं, तो उन दोनों में से किस को मक़द्दम और किस को

मुअख़्ख़र किया जाए।

"عَنْ اَبِیْ هُرَیْرَةَ فِیْمَنْ یَّسْتَأْذِنُ قَبْلَ اَنْ یُّسَلِّمَ
قَالَ لَا یُؤْذَنَ لَهٗ حَتّٰی یَبْدَأَ بِالسَّلَامِ (الحدیث)

अबूहुरैरा (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि उस शख़्स को इजाज़त न दी जाए जो पहले सलाम न करे।

"عَنْ کَلْدَةَ بْنِ حَنْبَلٍ قَالَ دَخَلْتُ عَلَی النَّبِیِّ ﷺ وَلَمْ اُسَلِّمْ
وَاسْتَأْذَنْتُ فَقَالَ النَّبِیُّ اِرْجِعْ فَقُلْ اَلسَّلَامُ عَلَیْکُمْ وَادْخُلْ"

(رواہ ابوداؤد والترمذی)

हज़रत कलदह (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मैं हुजूर (स.अ.व.) के पास गया और मैंने सलाम नहीं किया और इजाज़त तलब की। रसूलुल्लाह ने फ़रमाया कि वापस चले जाओ और आकर पहले अस्सलामु अलैकुम कहो, फिर दाख़िल हो।

आंहज़रत (स.अ.व.) ने अदब की तालीम के लिए हज़रत कलदा (रज़ि.) को इजाज़त का तरीक़ा सिर्फ़ ज़बानी बता देने के साथ साथ उनसे उस पर अमल भी करवाया। और ज़ाहिर है जो सबक़ इस तरह दिया जाए तो आदमी उसको कभी भी भुला नहीं सकता।

तिर्मिज़ी में है कि हज़रत इब्न उमर (रज़ि.) क़ज़ाए हाजत से फ़ारिग़ हो कर आ रहे थे, लेकिन धूप की ताब न ला सके तो क़ुरैश की एक झोपड़ी के पास पहुंच कर फ़रमया– "اَلسَّلَامُ عَلَیْکُمْ" क्या मैं अन्दर आ सकता हूं। सलामती से आ जाओ, साहबे ख़ाना ने कहा। आप ने फिर यही कहा। उसने फिर वही जवाब दिया। आपके पाँव जल रहे थे। कभी इस क़दम पर सहारा लेते तो कभी उस क़दम पर आप ने फ़रमाया कि यूं कहो कि आ

जाइए। फिर आप अन्दर तशरीफ़ ले गए।

मुफ़स्सिरीने किराम ने इन रिवायात से इस्तिदलाल किया है कि कुरआन शरीफ़ में जो सलाम करने का हुक्म है ये सलामे इस्तीज़ान है जो इजाज़त हासिल करने के लिए बाहर से किया जाता है, ताकि अन्दर जो शख़्स है वह मुतवज्जेह हो जाए और जो अलफ़ाज़ इजाज़त तलब करने के लिए कहेगा वह साहबे ख़ाना सुन ले और घर में दाख़िल होने के लिए हसबे मामूल दोबारा सलाम करे।

तालीमे रसूल और सहाबा का अमल

तालीमे सुन्नत और तआमुले सहाबा की रौशनी में उलमाए किराम ने इसकी तफ़सील की है कि मकान अगर बड़ा हो और सलाम की आवाज़ न पहुंचे तो पहले इत्तिला करना और इजाज़त तलब करना ज़रूरी है और फिर मुलाक़ात के वक़्त सलाम करना चाहिए।

अगर मकान छोटा हो, तो इजाज़त तलब करने से पहले सलाम करना चाहिए। और घर वालों को सलाम करने का मफ़हूम बाज़ मुफ़स्सिरीन ने ये भी लिया है कि पहले इजाज़त हासिल करो और जब घर में जाओ तो सलाम करो। इस्तीज़ान वाजिब है और तक़्दीमे सलाम सुन्नत।

इस्तीज़ान (इजाज़त) का एक तरीक़ा ये भी हो सकता है कि अगर कोई घर वाला सामने मिल जाए तो पहले सलाम कर ले फिर इजाज़त तलब करे।

आम रिवायात से जो तरीक़ा मालूम होता है कि बाहर से सलाम करे। "اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ" उसके बाद अपना नाम लेकर बतलाए कि फ़लां शख़्स आप से मिलना चाहता है।

अगर साहबे ख़ाना को तलबे इजाज़त और सलाम से मालूम न हो सके कि कौन साहब हैं और साहबे ख़ाना मालूम करे कि कौन साहब हैं। तो जवाब में पूरा नाम मअ़ उर्फ़ी नाम ज़ाहिर कर दे। जिससे वह मुतआ़रफ़ हो। चूंकि बाज़ हज़रात का नाम उर्फ़ी ज़्यादा मशहूर होता है। यही तरीक़ा बेहतर मालूम होता है कि अपना पूरा नाम व पता पूरे तरीक़ा से ज़ाहिर कर दे। ताकि घर वालों को पहचानने में परेशानी और तकलीफ़ न हो, जैसा कि फ़ारूक़े आज़म (रज़ि.) का अमल था कि आप ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के दौलत कदा पर हाज़िर हो कर ये अलफ़ाज़ फ़रमाए थे। "اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ (عَلٰى رَسُوْلِ اللّٰهِ) اَيَدْخُلُ عُمَرُ" (इब्न कसीर) यानी आप ने सलाम के बाद कहा कि क्या उमर (रज़ि.) दाख़िल हो सकता है।

सही मुस्लिम में रिवायत है। हज़रत अबूमूसा अशअ़री (रज़ि.) हज़रत उमर के पास मुलाक़ात के लिए गए और इजाज़त हासिल करने के लिए ये जुमला फ़रमाया– "اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ هٰذَا اَبُوْ مُوْسٰى. اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ هٰذَا الْاَشْعَرِىُّ" सलाम के बाद उसमें पहले अपना नाम बताया फिर मज़ीद वज़ाहत के लिए अशअ़री जो ख़ानदानी निस्बत थी ज़िक्र फ़रमाया और ये इसलिए कि जब तक साहबे ख़ाना इजाज़त लेने वाले को पहचानता नहीं है, इजाज़त देने में उसे तरद्दुद होता है। इस तरद्दुद व तशवीश से बचाने के लिए ज़रूरी है इजाज़त तलब करने वाले को कि अपना पूरा नाम व तख़ल्लुस ज़ाहिर कर दे, ताकि मुख़ातब को परेशानी और इज़ा न हो और वह पचानने के बाद बख़ुशी इजाज़त दे दे।

कई मंज़िला इमारत में तलबे इजाज़त

अगर एक घर में कई फ़ैमलियां रहती हैं, या कई मंज़िला मकान हो और हर एक मंज़िल में कोई रहता हो। तो हर एक अलग मुस्तक़िल घर के हुक्म में है, ख़्वाह दरवाज़ा एक ही क्यों न हो। उनमें से हर एक में जाने के लिए इजाज़त लेना ज़रूरी है, उन घरों में अजनबी को सरीह इजाज़त ले कर दाख़िल होना चाहिए। इजाज़त लेने में हरगिज़ अपने लिए नागवारी का एहसास नहीं होना चाहिए क्योंकि यह बहुत से मफ़ासिद की जड़ें काट देने का ज़रीआ है और हर तरह से दोनों के लिए मुफ़ीद है, फिर उन अहकामाते ख़ुदावंदी को न हक़ीर जानना चाहिए और न ग़ैर मुफ़ीद, ये अहकाम जो बज़ाहिर महज़ अदना जुज़ईयात मालूम होते हैं अल्लाह तआ़ला के क़ानून में हद दर्जा अहमियत रखते हैं और हद दर्जा एहतेमाम के मुस्तहिक़ हैं।

"मैं मैं" करने की मुमानअ़त

इजाज़त तलब करने के अन्दर सब से बुरा तरीक़ा ये है जिसके बाज़ हज़रात आदी होते हैं। बाहर से अन्दर जाने के लिए इजाज़त तलब की, या कुंडी बजाई, मुख़ातब अन्दर से मालूम करता है कि कौन साहब हैं, तो अपना पूरा नाम ज़ाहिर करने के बजाए जवाब में "मैं, मैं" या ख़ामोश खड़े रहते हैं, कोई जवाब नहीं देते। साहबे ख़ाना जिसने अस्ल आवाज़ नहीं पहचानी वह भला लफ़्ज़ "मैं" से क्या ख़ाक पहचानेगा। बल्कि ये मुख़ातब को तशवीश में डालने का एक तरीक़ा है। इससे इजाज़त की मसलिहतें फ़ौत हो जाती हैं। हदीस शरीफ़ में भी इस लफ़्ज़ मैं, मैं को पंसद नहीं किया गया है।

ख़तीब बग़दादी (रह.) ने अपनी तारीख़ में अली इब्न आसिम के वास्ते से नक़्ल किया है कि वह बसरा शहर गए तो हज़रत मुग़ीरा इब्न शोबा (रज़ि.) से मुलाक़ात के लिए हाज़िर हुए और दरवाज़ा पर दस्तक दी, हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने अन्दर से मालूम किया कौन साहब हैं जवाब दिया "अना" (मैं हूं) तो हज़रत मुग़ीरा (रज़ि.) ने फ़रमाया कि मेरे दोस्तों में से तो कोई भी ऐसा नहीं है कि जिसका नाम "अना" (मैं) हो। फिर बाहर तशरीफ़ लाए और उनको एक हदीस सुनाई कि एक मरतबा हज़रत जाबिर इब्न अब्दुल्लाह (रज़ि.) अपने वालिदे मरहूम के क़र्ज़ की अदाएगी के सिलसिले की फ़िक्र में आंहज़रत (स.अ.व.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और इजाज़त लेने के लिए दरवाज़ा पर दस्तक दी। आंहज़रत (स.अ.व.) ने अन्दर से मालूम किया कौन साहब हैं, तो हज़रत जाबिर (रज़ि.) ने भी "अना" से जवाब दिया। तो आप (स.अ.व.) ने बतौर ज़ज्र व तंबीह के फ़रमाया– "अना अना" आप (स.अ.व.) ने इस कहने को पसंद नहीं फ़रमाया, क्योंकि "मैं" कहने से ये तो मालूम नहीं हो सकता कि कौन है, जब तक कि अपना पूरा नाम या उरफ़ियत न बताई ज़ाए।

तलबे इजाज़त में संजीदा जुमले

हमारे शफ़ीक़ मुअल्लिम (स.अ.व.) ने इस्तीज़ान का तरीक़ा और उसके अलफ़ाज़ की भी तालीम फ़रमाई है। अबूदाऊद की हदीस में है–

"جَاءَ رَجُلٌ مِنْ بَنِي عَامِرٍ اِلَى النَّبِيِّ ﷺ فَقَالَ أَأَلِجُ فَقَالَ النَّبِيُّ لِلْجَارِيَةِ اُخْرُجِي فَقُولِي لَهُ قُلِ السَّلَامُ عَلَيْكُمْ أَأَدْخُلُ فَاِنَّهُ لَمْ يُحْسِنِ الِاسْتِيْذَانَ قَالَ فَسَمِعْتُهَا قَبْلَ اَنْ تَخْرُجَ اِلَيَّ الْجَارِيَةُ فَقُلْتُ اَلسَّلَامُ

عَلَيْكُمْ أَأَدْخُلُ فَقَالَ وَعَلَيْكَ أُدْخُلْ فَدَخَلْتُ." (اَلْحَدِيْثُ)

बनी आमिर का एक शख़्स आंहज़रत (स.अ.व.) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा "أَأَلِجُ" मैं अन्दर आऊँ। आप (स.अ.व.) ने एक बांदी से फ़रमाया ये शख़्स इजाज़त का तरीक़ा नहीं जानता है, बाहर जा कर इसको तरीक़ा सिखा दो और इससे कह दो इस तरह से कहे "اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ أَأَدْخُلُ" क्या मैं आ सकता हूं। वह शख़्स कहता है कि मैंने इस बांदी के आने से पहले आप (स.अ.व.) के कलिमात सुन लिए थे। चुनांचे दोबारा उसी तरह अर्ज़ किया जैसा कि आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया– तो आप (स.अ.व.) जवाब में "وَعَلَيْكَ اُدْخُلْ" आप (स.अ.व.) ने आने की इजाज़त मरहमत फ़रमा दी, मैं दाख़िल हो गया। तो मालूम हुआ कि उम्मते मुहम्मदीया (स.अ.व.) के लिए साहबे उम्मत (स.अ.व.) का पसंदीदा तरीक़ा ये है। "اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ أَأَدْخُلُ. أَأَدْخُلُ" के अलफ़ाज़ तलबे इजाज़त में इस्तेमाल किए जाएें, यानी क्या मैं आ सकता हूं या हाज़िर हो सकता हूं।

"أَأَلِجُ" की तहक़ीक़:– उस शख़्स ने "أَأَدْخُلُ" के बजाए लफ़्ज़ "أَأَلِجُ" इस्तेमाल किया था, ये नामुनासिब था क्योंकि "أَأَلِجُ- وُلُوْجٌ" से मुश्तक़ है जसके माना किसी तंग जगह में घुसने के हैं। और ये लफ़्ज़ तहज़ीब के ख़िलाफ़ था। जिस तरह लफ़्ज़ घुसना उर्दू में अन्दर दाख़िल होने के मुक़ाबले में बोला जाता है जो मुहज़्ज़ब मुआशरा में एक तरह की बदतहज़ीबी शुमार होती है। इस वाक़िआ से मालूम होता है कि शरीअत ने हर पहलू का लिहाज़ रखा है कि बात करते हुए कैसे अलफ़ाज़ इस्तेमाल करने चाहिएं, ताकि मुख़ातब दिमाग़ी बोझ महसूस न करे। ऐसे

अलफ़ाज़ के इस्तेमाल करने का अंदाज़ा वहां पता चल सकता है, जो हज़रात बहुत ही नाज़ुक तबअ़ होते हैं।

जवाब न मिलने पर सुन्नत तरीक़ा

अगर किसी के दरवाज़ा पर जा कर इजाज़त तलब की जाए और अन्दर से कोई जवाब न आए। तो सुन्नत तरीक़ा ये है कि दोबारा इजाज़त तलब करे, अगर फिर भी आवाज़ न आए तो तीसरी मरतबा इजाज़त तलब करे, अगर इस मरतबा भी कोई जवाब न मिले तो वापस लौट जाना चाहिए। (जवाब के इंतिज़ार में खड़ा नहीं रहना चाहिए। और अगर इजाज़त तलब किए बग़ैर साहबे ख़ाना का इंतिज़ार करे तो वह उसके हुक्म में दाख़िल नहीं है)

तीन मरतबा कहने से ये तो यक़ीन हो जाता है कि आवाज़ तो सुन ली होगी मगर या तो वह ऐसी हालत में है कि जवाब नहीं दे सकता। मसलन नमाज़ पढ़ रहा है या बैतुलख़ला में है, या गुस्ल कर रहा है, या सो रहा है, या किसी इसी तरह के काम में मशगूल है, या उसको मिलना मंज़ूर नहीं है और न कोई ऐसा फ़र्द है कि जिसके ज़रीए वह मना करा दे।

रिवायत है कि हज़रत अबूमूसा अशअ़री (रज़ि.) हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि.) की ख़िदमत में तशरीफ़ ले गए। तीन मरतबा इजाज़त तलब की, जब कोई जवाब न आया तो वापस लौट गए। थोड़ी देर में हज़रत उमर (रज़ि.) ने कहा कि अब्दुल्लाह इब्न क़ैस आना चाहते हैं उनको बुला लो। बाहर जा कर देखा तो वह वापस हो चुके थे। वापस जा कर हज़रत उमर (रज़ि.) को उनके जाने की ख़बर दी, उसके बाद जब हज़रत अबू मूसा अशअ़री (रज़ि.)

की हज़रत उमर (रज़ि.) से मुलाक़ात हुई, तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने मालूम किया कि आप क्यों वापस चले गए थे तो हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ि.) ने जवाब दिया कि आंहज़रत (स.अ.व.) का इरशादे मुबारक है–

"اِذَا اسْتَأْذَنَ اَحَدُ كُمْ ثَلَاثًا فَلَمْ يُؤْذَنْ لَهٗ فَلْيَرْجِعْ"

कि तीन मरतबा इजाज़त चाहने के बाद अगर इजाज़त न मिले तो वापस लौट जाओ। मैंने तीन मरतबा इजाज़त चाही जब जवाब न आया तो मैं इस हदीस पर अमल करते हुए वापस लौट गया। हज़रत उमर (रज़ि.) ने इस हदीस के सही होने के सुबूत के लिए अपने ख़ास अंदाज़ में कहा कि किसी ग्वाह को पेश करो, वरना मैं तुम को सज़ा दूंगा। हज़रत अबू मूसा अशअरी वहां से उठ कर एक अन्सार के मजमा में पहुंचे और उनसे सारा वाक़िआ ब्यान किया और फ़रमाया कि अगर तुम में से किसी ने हुजूर (स.अ.व.) का ये हुक्म सुना हो तो मेरे साथ चल कर उमर (रज़ि.) से तस्दीक़ करा दे। अन्सार (रज़ि.) ने कहा कि ये हुक्म तो आम है, बेशक आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया है और हम सब ने सुना है, हम अपने सब से कम उम्र लड़के को आपके साथ ग्वाह के तौर पर साथ कर देते हैं। चुनांचे अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि.) गए और हज़रत उमर से कहा कि मैंने भी ये हदीस आप (स.स.व.) से सुनी है। हज़रत उमर (रज़ि.) उस वक़्त अफ़सोस करने लगे कि बाज़ारों के लेन देन ने मुझे इस मस्अले से ग़ाफ़िल रखा।

मिलने पर मजबूर न करना

सलाम या दस्तक वग़ैरा के ज़रीआ से इजाज़त हासिल

करने की कोशिश तीन मरतबा करने के बाद अगर कोई जवाब न आए तो वहां पर जम कर बैठना साहबे ख़ाना के लिए मोजिब इज़ा है। इस्लाम ने इसको पसंद नहीं किया है। किसी शख़्स को ये हक़ नहीं कि वह मुलाक़ात के लिए दूसरे को मजबूर करे या उसके दरवाज़े पर ठहर कर उसे तंग करने की कोशिश करे और न ही ये पसंद है कि दरवाज़ा पर जा कर बद–तहज़ीबी के साथ पुकारा जाए। हुज़ूर (स.अ.व.) के अहदे मुबारक में ज़िन लोगों ने आप (स.अ.व.) की सोहबत में रह कर इस्लामी अदब व तहज़ीब की तरबियत पाई थी वह आप (स.अ.व.) के औक़ात का हमेशा लिहाज़ रखते थे। उन हज़रात को पूरा पूरा एहसास और ख़्याल था कि आप (स.अ.व.) अल्लाह के दीन के काम में किस क़दर मसरूफ़ ज़िन्दगी बसर फ़रमाते हैं और उन थका देने वाली मसरूफ़ीयतों के दौरान में लाज़िमन कुछ वक़्त आप (स.अ.व.) के आराम के लिए और कुछ वक़्त आप (स.अ.व.) की अहम मशग़ूलियतों के लिए और कुछ वक़्त अपनी आएली ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी है। चूंकि ये हज़रात बख़ूबी जानते थे कि आप (स.अ.व.) के घरेलू मआमलात भी दीन में एक अहम बाब की हैसियत रखते हैं। इसलिए वह हज़रात आप (स.अ.व.) से मुलाक़ात के लिए उसी वक़्त हाज़िर होते थे जब आप (स.अ.व.) बाहर तशरीफ़ फ़रमा होते और कभी आपको मज्लिस में मौजूद न पाते तो तहज़ीब के साथ बैठ कर आपके आने का इंतिज़ार करते थे। किसी शदीद ज़रूरत के बग़ैर आप (स.अ.व.) को बाहर तशरीफ़ लाने की ज़हमत न देते थे। लेकिन अरब के उस माहौल में जहां आम तौर पर

लोगों को किसी शाइस्तगी की तरबियत न मिली थी, बारहा इस क़िस्म के लोग भी आप (स.अ.व.) से मुलाक़ात के लिए हाज़िर हो जाते थे, जिनका तसव्वुर ये था कि दावत इलल्लाह और इस्लाहे ख़ल्क़ का काम करने वाले को किसी वक़्त भी आराम का हक़ नहीं है, अपने आप को समझते थे कि हमारा हक़ है कि रात दिन में जब दिल चाहे आप (स.अ.व.) के पास बिला रोक टोक चले आयें और जब भी वह आ जायें और काम के लिए दरख़्वास्त करें, आप (स.अ.व.) इरशाद फ़रमाऐं। बाज़ हज़रात ऐसे भी थे जो बिल्कुल इस्लामी तालीम से नाबलद और नाआशना होते थे, वह हुजरए मुबारक के पास आपको ज़ोर ज़ोर से अपनी सादगी की वजह से पुकारते थे। ऐसे मुतअ़द्दद वाक़िआत अहादीस में मिलेंगे।

मसलन: वफ़्द बनी तमीम मिलने के लिए आया। आप (स.अ.व.) मस्जिद में तशरीफ़ फ़रमा न थे। हुजरए मुबारका में तशरीफ़ ले जा चुके थे। वह लोग बाहर ही से पुकारने लगे। "يَا مُحَمَّدُ اُخْرُجْ اِلَيْنَا" ऐ मुहम्मद हमारी तरफ़ निकल आ। ये बदअक़्ली थी या सादगी। वह तहज़ीब व तमद्दुन से आशना नहीं थे।

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को उन हज़रात की इन हरकात से बहुत सख़्त तकलीफ़ होती थी। मगर आप (स.अ.व.) अपनी तबअ़े हिलमी की वजह से इसको बरदाश्त फ़रमाते थे। आख़िरकार अल्लाह तआला ने इस नाशाइस्तगी के अमल पर मलामत करते हुए लोगों को ये हिदायत दी– "وَلَوْ اَنَّهُمْ صَبَرُوْا حَتّٰى تَخْرُجَ اِلَيْهِمْ" (الآيت الحجرات) कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) जब घर में तशरीफ़ फ़रमा हों तो

उनको आवाज़ दे कर पुकारना अदब के ख़िलाफ़ है, बल्कि लोगों को चाहिए कि इंतिज़ार करें और जिस वक़्त आप (स.अ.व.) अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ बाहर तशरीफ़ लायें तो उस वक़्त मुलाक़ात करें।

आप (स.अ.व.) की ज़ात मंबउलबरकात थी। मुसलमानों के तमाम दीनी व दुन्यवी उमूर का मरकज़ व मलजा थी। किसी मामूली से मामूली ज़िम्मादार आदमी के लिए भी काम करना सख़्त दुश्वार व मुश्किल हो जाता है अगर उसका कोई निज़ामुलऔक़ात न हो।

सहाबा (रज़ि.) का तर्ज़े अमल

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की मजलिस में बैठने वालों और आप (स.अ.व.) से मुलाक़ात करने वालों को जो आदाब सिखाए गए थे। उनका मंशा ये था कि आप (स.अ.व.) से मुलाक़ात और बात चीत में इंतिहाई अदब मलहूज़ रखें। किसी शख़्स की आवाज़ आंहज़रत (स.अ.व.) की आवाज़ से बुलंद न हो। आप (स.अ.व.) से ख़िताब करते हुए लोग ये न भूल जायें कि वह आ़म आदमी या अपने बराबर से मुलाक़ात नहीं कर रहे हैं, बल्कि अल्लाह के रसूल पाक (स.अ.व.) से मुख़ातब हैं। इस हुक्म के नाज़िल होने पर सहाबए किराम की ये कैफ़ियत हो गई थी कि हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने अर्ज़ किया या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) क़सम है ख़ुदाए पाक की अब मैं मरते दम तक आप (स.अ.व.) से इस तरह गुफ़्तगू करूंगा जैसे कोई सरगोशी करता हो।

हज़रत उमर (रज़ि.) इस क़दर आहिस्ता बोलने लगे थे कि बाज़ औक़ात आंहज़रत (स.अ.व.) को दोबारा मालूम

करना पड़ता था। और साबित इब्न कैस (रज़ि.) की ख़लक़तन आवाज़ बुलंद थी मगर इस आयत को सुन कर डर से बहुत रोए और निहायत तकल्लुफ़ कर के अपनी आवाज़ को पस्त कर दिया था। इन वाक़िआत से ये अंदाज़ लगाया जा सकता है कि अपने बुजुर्ग अशख़ास के साथ मुलाक़ात और गुफ़्तगू में क्या तर्ज़े अमल इख़्तियार करना चाहिए।

बड़ों से मुलाक़ात के आदाब

उलमा ने तस्रीह की है कि जो हज़रात इल्म में या उम्र में बड़े हों इसी तरह मशाइख़ व असातिज़ा के साथ भी मुलाक़ात के वक़्त ये अदब मलहूज़ रहना चाहिए जो मन्दरजा ज़ैल हैं–

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि बाज़ औक़ात किसी अन्सारी सहाबी के दरवाज़ा पर पूरी दोपहर इंतिज़ार करता रहता था कि जब वह बाहर तशरीफ़ लायें तो उनसे किसी हदीस की तहक़ीक़ करूं। अगर मैं उनसे मिलने के लिए इजाज़त तलब करता तो वह ज़रूर मुझ को इजाज़त मरहमत फ़रमा देते। मगर इसको ख़िलाफ़े अदब समझता था। इसलिए इंतिज़ार की मशक़्क़त को गवारा करता था।

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि जब मैं बाज़ लोगों के पास मुलाक़ात के लिए जाता और मालूम करता कि वह सो रहे हैं तो अपनी चादर वहीं चौखट पर रख कर इंतिज़ार के लिए बैठ जाता। लू के झोंके चलते रहते जिसकी वजह से मेरे मुंह और बदन पर मिट्टी पड़ती रहती थी। मगर मैं वहीं पर पड़ा रहता था। जब वह उठते और अपनी ज़रूरीयात से बाहर निकलते तो उस

वक़्त जिस हदीस को मालूम करना होता था उसे दरयाफ़्त करता था। वह हज़रात कहते थे कि तुम ने अच्छा नहीं किया, मुझे इत्तिला करा देते। मैं अर्ज़ करता कि मेरा दिल नहीं चाहा कि आप मेरी वजह से अपनी ज़रूरीयात से फ़ारिग़ होने से पहले ही आ जाऐं। ये दलील है कि सहाबा रिज़वानुल्लाह तआला अलैहिम अजमईन व ताबईन ने भी अपने उलमा व माशइख़ के साथ भी उसी आदाब को मलहूज़ रखा है, क्योंकि वह वारिसीने अंबिया थे। और दलील उनकी ये है कि हज़रत अबू दरदा (रज़ि.) को एक दिन रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने देखा कि वह हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के आगे चल रहे हैं, फ़रमाया कि क्या तुम एक ऐसे शख़्स के आगे चलते हो जो तुम से दुनिया व आख़िरत में बेहतर है और फ़रमाया कि दुनिया में आफ़ताब का तुलूअ व ग़ुरूब किसी ऐसे शख़्स पर नहीं हुआ जो अंबिया के बाद अबूबक्र से बेहतर और अफ़ज़ल हो। (रूहुलब्यान)

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) ने फ़रमाया कि आलिम अपनी क़ौम में मिस्ल नबी के होता है, अल्लाह ने नबी की शान में ये हिदायत फ़रमाई है कि उनके बाहर आने का इंतिज़ार किया जाए।

हज़रत अबूउबैदा (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मैंने किसी आलिम के दरवाज़ा पर जा कर दस्तक नहीं दी, बल्कि इसका इंतिज़ार किया कि वह ख़ुद ही जब बाहर तशरीफ़ लाऐंगे तो उस वक़्त उनसे मुलाक़ात करूंगा।

(रूहुलमआनी)

मज़कूरा बाला वाक़िआत से मालूम हुआ कि अदब ये

भी है कि अपने उस्ताज़ और मशाइख़ का बग़ैर उनको इत्तिला किए हुए बाहर ही इंतिज़ार में बैठा रहे, जब वह अपनी फुरसत के मुताबिक़ बाहर तशरीफ़ लायें तो मुलाक़ात कर लें, कुरआन करीम में इसकी तालीम दी गई है।

तालिब इल्मों को इन वाक़िआत से सबक़ लेना चाहिए कि सहाबए किराम एक हदीस हासिल करने के लिए दरवाज़ा पर बैठ जाते थे और आज हमारा क्या हाल है कि किसी भी वक़्त उस्ताज़ का दरवाज़ा जा कर खटखटा देते हैं।

अदब व एहतेराम का समरा

ये अदब ही तो था जिसने हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) को बह्रुलउलूम का लक़ब दिलवाया, आप हुजूर (स.अ.व.) के चचा ज़ाद भाई होने के साथ आंहज़रत (स.अ.व.) से बहुत ज़्यादा क़रीब भी रहते थे। ये सब उस जांफ़शानी का ही समरा था, वरना अगर ये भी किसी ख़ुश फ़हमी या बड़ाई में मुब्तला हो जाते तो ये मरातिब जिन्होंने उनको इज़्ज़त के बामेउरूज तक पहुंचा दिया कैसे हासिल होते। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का इरशाद है कि जिससे इल्म हासिल करो उससे तवाज़ो के साथ पेश आओ। बुख़ारी में हज़रत मुजाहिद (रह.) से नक़्ल किया गया है, हज़रत अली (रज़ि.) का इरशाद है कि जिस शख़्स से मैंने एक लफ़्ज़ भी पढ़ा मैं उसका गुलाम हूं ख़्वाह आज़ाद करे या बेच दे।

इन इरशादात और हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) के अमल की रौशनी में ज़रा अपने मुआशरा के ऊपर भी नज़र डालनी चाहिए और देखना चाहिए कि मुआशरा की

क्या हालत है। आज हमारे मुआशरा में साहबज़ादा होने का रोग एक कैंसर की शक्ल इख़्तियार कर गया है। कितने साहबज़ादे हैं जो अपने नेक सीरत, नेक दिल वालिदैन के उलूम के वारिस हैं? क्या आज हमारे दरमियान साहबज़ादगीयत होना कम इल्म होने और मेहनत न करने की सनद नहीं बन गया है?

क़ाबिले ग़ौर बात है कि क्या साहबज़ादे पैदाइशी ऐसे होते हैं या फिर बाद में हालात ऐसा कर देते हैं और इस मंज़िल तक पहुंचा देते हैं तो मालूम होगा कि इसमें सब से ज़्यादा हाथ जाहिल मुरीदों और मोतक़िदीन का है कि जिन्होंने साहबज़ादों को सनम ख़ाना के सनम का दर्जा दे रखा है, एक वह शख़्स जो किसी से मुलाक़ात करने में मुंह बनाता है मगर वह साहबज़ादों के सामने दोज़ानों बैठ जाता है। इस्लाम शख़्सियत परस्ती का शिद्दत से मुख़ालिफ़ है चूंकि शख़्सियत परस्ती ही बुत परस्ती का वसीला है। हमें ग़ौर करना चाहिए कि हम क्या शख़्सियत परस्ती को हवा नहीं दे रहे हैं? हालांकि इस्लाम में बुज़ुर्गी का दारोमदार तक़्वा पर है, इस तरह न सिर्फ़ हम एक ग़ैर इस्लामी तरीक़ा की ताईद कर रहे हैं, बल्कि उन साहबज़ादों का मुस्तक़्बिल भी ख़राब कर रहे हैं, जो ग़लतफ़हमी में मुब्तला हो जाते हैं। चूंकि ये एक फ़ितरी चीज़ है, जब हम किसी शख़्स को उसकी हैसियत से ज़्यादा बढ़ाऐंगे तो यक़ीनन वह अपने बारे में ग़लत राय क़ाइम कर लेगा और जो कुछ उसे अपने आबा व अजदाद की वरासत की हिफ़ाज़त के लिए करना चाहिए था वह उसको कमाहक़्क़हू अदा नहीं कर सकेगा। लिहाज़ा इसका

जो मन्तिक़ी और लाज़मी नतीजा निकलना चाहिए आज वह हमारे सामने भयानक शक्ल इख़्तियार किए हुए है। इसलिए आज सब से ज़्यादा अहम ज़रूरत ये है कि वह लोग जो ग़लबए अक़ीदत में मुब्तला हैं उनसे कहा जाए कि लिल्लाह तुम अपने लिए नहीं तो इन साहबज़ादों के मुस्तक़्बिल की हिफ़ाज़त के लिए शख़्सियत परस्ती को छोड़ो, जो आज नहीं तो कल, कल नहीं तो बहुत जल्द एक भयानक शक्ल इख़्तियार करने वाला है, फिर शायद कोई इस्लाह की भी ताक़त न रख सकेगा।

हुज़ूर (स.अ.व.) की हज़रत सअ़द (रज़ि.) के घर से वापसी

मुसनद अहमद में हज़रत अनस (रज़ि.) से रिवायत है कि एक मरतबा हुज़ूर (स.अ.व.) हज़रत सअ़द इब्न उबादा (रज़ि.) के मकान पर तशरीफ़ ले गए। सुन्नत के मुताबिक़ इजाज़त चाहने के लिए सलाम किया। हज़रत सअ़द इब्न उबादा (रज़ि.) ने जवाब तो दिया मगर इतना आहिस्ता कि हुज़ूर (स.अ.व.) न सुन सकें। आप (स.अ.व.) ने मुकर्रर सलाम किया फिर सेहबारा सलाम किया। हज़रत सअ़द (रज़ि.) सुन कर आहिस्ता से जवाब देते रहे। तीन मरतबा ऐसा करने के बाद आंहज़रत (स.अ.व.) लौटने लगे। जब हज़रत सअ़द (रज़ि.) ने देखा कि आवाज़ नहीं आ रही है तो घर से निकल कर पीछे दौड़े और उज़्र पेश किया कि– या रसूलुल्लाह हर मरतबा आप की आवाज़ सुनी और जवाब भी दिया मगर आहिस्ता जवाब दिया, ताकि आपकी ज़बान मुबारक से सलामती की दुआ मेरे बारे में ज़्यादा से ज़्यादा निकले जो मेरे लिए मूजिबे बरकत है। आप (स.अ.व.) ने तरीक़ए सुन्नत बतलाया कि तीन मरतबा

जवाब न आने पर वापस हो जाना चाहिए। उसके बाद हज़रत सअ़द (रज़ि.) हुजूर (स.अ.व.) को घर ले गए। उन्होंने मेज़बानी की जिसको हुजूर (स.अ.व.) ने क़बूल फ़रमाया। इसी तरह आंहज़रत (स.अ.व.) के साथ मुहब्बत के और बहुत से वाक़िआत पेश आए हैं।

हज़रत अबदुल्लाह इब्न ज़ैद इब्न अब्दुरब्बिही (रज़ि.) बाग़ या खेत में पानी दे रहे थे। बेटे ने पैग़म्बरे इस्लाम अलैहिस्सलाम के विसाल की इत्तिला दी तो फ़ौरन आंखें बंद कर लीं, और बारगाहे एज़दी में अ़र्ज़ किया कि ऐ ख़ुदा! मैंने जिन आंखों से पैग़म्बर अलैहिस्सलाम का जमाल देखा है आप (स.अ.व.) के बाद मैं उन आंखों से किसी दूसरी चीज़ को देखना नहीं चाहता। मुझ से मेरी आंखों की बसारत ले ले। उनकी दुआ़ क़बूल हो गई।

उहुद की लड़ाई में मुसलमानों को अज़ीयत भी पहुंची और शहीद भी बहुत से हुए। मदीना तैयबा में जब ये ख़बर पहुंची तो औरतें तहक़ीक़े हाल के लिए घरों से निकल पड़ीं। एक अन्सारी औरत ने मजमा को देख कर बेताबाना अंदाज़ में मालूम किया कि हुजूर (स.अ.व.) कैसे हैं? उस मजमा में से किसी ने कहा तुम्हारे वालिद शहीद हो गए हैं। उस अल्लाह की बंदी ने "اِنَّا لِلّٰهِ" पढ़ी और बेताबी से हुजूर (स.अ.व.) की ख़ैरियत दरयाफ़्त की, इतने में किसी ने ख़ाविंद के शहादत की ख़बर सुनाई। किसी ने बेटे की और किसी ने भाई के शहीद होने की ख़बर सुनाई मगर अन्सारी औरत ने मालूम किया कि हुजूर (स.अ.व.) कैसे हैं? लोगों ने जवाब दिया कि आप (स.अ.व.) बख़ैर हैं और तशरीफ़ ला रहे हैं, इससे वह मुतमइन न

हुई और मालूम किया कहां हैं? लोगों ने एक मजमा की तरफ़ इशारा किया कि आप (स.अ.व.) वहां हैं। ये दौड़ कर वहां पहुंची, और अपनी आंखों को आप (स.अ.व.) की ज़ियारत से ठंडा कर के अर्ज़ किया या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) आप की ज़ियारत हो जाने के बाद मेरे लिए हर मुसीबत हल्की और मामूली है।

हज़रत सअ़द (रज़ि.) का अमल

सहाबए किराम के हुज़ूर (स.अ.व.) के साथ मुहब्बत के बेशुमार वाक़िआ़त पाये जाते हैं और सच पूछिए तो मुहब्बते नबवी (स.अ.व.) ही उन हज़रात की ज़िन्दगी का सरमाया थी। जिसकी वजह से जान, माल और औलाद सब इस्लाम पर निछावर करने के लिए हमा वक़्त आमादा रहते थे। इस रास्ता में किसी ख़ौफ़ व ख़शीयत का उन पर कभी ग़लबा नहीं होता था। ख़ौफ़ व मौत का डर उनके दिलों से निकल चुका था। वह सरवरे काएनात (स.अ.व.) के हुक्म पर निसार होने को अपने लिए बाइसे सद इफ़्तिख़ार समझते थे।

हज़रत सअ़द (रज़ि.) का अमले मज़कूरा ग़लबए इश्क़ व मुहब्बत का अमल था कि उस वक़्त ज़ेहन उस तरफ़ न गया कि ग़रीब ख़ाना पर सरदारे दो आलम (स.अ.व.) तशरीफ़ फ़रमा हैं, मुझ को फ़ौरन जा के क़दम बोसी कर लेना चाहिए, बल्कि ज़ेहन उस तरफ़ मुतवज्जेह हो गया कि आप (स.अ.व.) की ज़बान मेरे लिए बाइसे नजात होगी और दुनिया व आख़िरत में फ़लाह व सलाह का ज़रीआ साबित होगी।

हज़रात सहाबए किराम (रज़ि.) को जो आप (स.अ.व.)

से तअ़ल्लुक़ था, वह मुहब्बते तबई के दर्जा में था, बल्कि उससे भी आगे कोई जर्दा हो तो वह हासिल था और जब मुहब्बते तबई तरक़्क़ी कर के दर्जए इश्क़ में पहुंच जाती है तो महबूब के अलावा कुछ भी नज़र नहीं आता है। हज़रत सअ़द (रज़ि.) का तअ़ल्लुक़ भी उसी दर्जा का था। नीज़ आंहज़रत (स.अ.व.) की मिज़ाज शनासी की बिना पर हज़रत सअ़द इब्न उबादा (रज़ि.) को मालूम था कि आप (स.अ.व.) मेरे इस अमल से नाराज़ नहीं होंगे क्योंकि उनकी नीयत और जज़्बा बहुत ही मुबारक था। चुनांचे ऐसा ही हुआ और, आंहज़रत (स.अ.व.) ने किसी नागवारी का इज़हार नहीं फ़रमाया। बल्कि उस जज़्बा की क़द्र फ़रमाई, जैसा कि आप (स.अ.व.) की दुआ से ज़ाहिर होता है।

"اَللّٰھُمَّ اجْعَلْ صَلوٰتَکَ وَرَحْمَتَکَ عَلٰی اٰلِ سَعْدٍ"

तर्जुमाः ऐ मेरे अल्लाह! अपनी ख़ास नवाज़िश और रहमतें नाज़िल फ़रमा सअ़द के घर वालों पर।

साहबे ख़ाना का इख़्तियार

"فَاِنْ لَّمْ تَجِدُوْا فِیْھَا اَحَدًا فَلَا تَدْخُلُوْھَا حَتّٰی یُؤْذَنَ لَکُمْ وَ اِنْ قِیْلَ لَکُمُ ارْجِعُوْا فَارْجِعُوْا ھُوَ اَزْکٰی لَکُمْ وَاللّٰہُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِیْمٌ. (الآیۃ النور پ–۱۸)

आयते मज़कूरा में फ़रमाया जा रहा है कि जब तक इजाज़त न दी जाए दाख़िल न हो और अगर अन्दर कोई न हो या हो मगर इजाज़त न दे और मिलने से इन्कार कर दे या साहबे ख़ाना ख़ुद ही मना कर दे कि इस वक़्त मुलाक़ात नहीं हो सकती, तशरीफ़ ले जाओ या घर के अन्दर से कोई जवाब ही न आए, तो इन तमाम सूरतों में चूंकि इजाज़त न हुई, दाख़िल होना जाइज़ न होगा।

ये इन्कार हम को नागवार न गुज़रना चाहिए और न बुरा मानना चाहिए, बल्कि ये तरीक़ा तो बहुत ही मुनासिब और बेहतर है, क्योंकि हर शख़्स के हालात हर वक़्त यक्सां नहीं रहते। बाज़ औक़ात इंसान मजबूर होता है बाहर भी नहीं आ सकता है न कोई ऐसा आदमी होता है जिसके ज़रीआ से इत्तिला करा दे कि इस वक़्त सूरतेहाल ये है। मआफ़ रखा जाए, बहुत से ऐसे मवाक़े हम सब को ही पेश आते रहते हैं। अपने पर क़यास कर के उसके उज़्र को क़बूल कर लेना चाहिए। हमारे लिए हसबे इरशादे ख़ुदावंदी "اِرْجِعُوا" यानी वापस हो जाओ, वापस आ जाना ही बेहतर है, वरना बहुत सी ख़राबियों का बाइस हो सकता है। अल्लाह तआला का ख़ुद इरशाद है कि वह हमारे करतूतों और दिल के भेदों से ख़ूब वाक़िफ़ है। अल्लाह तआला जानते हैं कि आने वाले का क्या जज़्बा था, और मुलाक़ात न करना, जवाब न देना किसी मजबूरी के तहत था या नहीं। हम जानते हैं कि इससे ये भी मुराद हो सकती है कि अगर साहबे ख़ाना ने बरबिनाए तकब्बुर व तहक़ीर मिलने की इजाज़त नहीं दी, तो भी हम जानते हैं, और अगर कोई वाक़ई उज़्र था उससे भी हम वाक़िफ़ हैं। अल्लाह तआला जानते हैं कि अगर ख़िलाफ़े हुक्म करोगे तो सज़ा के मुस्तहिक़ होगे। अल्लाह तआला दोनों की नीयत और दिल के भेदों से ख़ूब वाक़िफ़ है।

हज़राते मुहाजिरीन (रज़ि.) से मनकूल है। वह अफ़सोस किया करते थे कि मैं उम्र भर इस तमन्ना व ख़्वाहिश में रहा कि किसी के मकान पर जा कर इजाज़त लेने की नौबत आए और वह मुझ को ये जवाब दे कि वापस हो

जाओ, ताकि मैं उस आयते ख़ुदावंदी के हुक्म की तामील का सवाब हासिल कर सकूं, जो मज़कूरा आयत में ब्यान किया गया है। मगर अजीब इत्तिफ़ाक़ है कि मुझ को कभी ये नेअ़मत नसीब न हुई और उस पर अमल करने का मौक़ा न मिल सका।

मुलाक़ात में जानिबैन की रिआ़यत

शरीअ़ते इस्लाम ने हुस्ने मुआ़शरत के आदाब सिखाने और सब को इज़ा व तकलीफ़ से बचाने का दो तरफ़ा मोतदिल निज़ाम क़ाइम किया है। इस आयत में जिस तरह आने वाले को ये हिदायत दी गई है कि अगर इजाज़त चाहने पर आप को जवाब न मिले या ये कह दिया जाए कि इस वक़्त मुलाक़ात नहीं हो सकती तो कहने वाले को माज़ूर समझो और ख़ुशदिली से लौट जाओ। नागवारी और बुरा न मानो, कबीदगी और कशीदगी की कोई ज़रूरत नहीं, बिला तकद्दुर, बग़ैर नाराज़गी के वापस हो जाना चाहिए। लड़ने झगड़ने या ठहरने की ज़रूरत नहीं है। एक हदीस में मुलाक़ात का दूसरा रुख़ इस तरह आया है कि रसूलुल्लाह ने फ़रमाया– "اِنَّ لِزَوْرِکَ عَلَیْکَ حَقًّا" आप से मुलाक़ात करने वाले का भी आप पर हक़ है वह ये है कि उसको अपने पास बुलाओ या बाहर आ कर उससे मुलाक़ात करो। उसका इकराम करो कि वह आप का मेहमान है। जो हुक़ूक़ शरीअ़त ने मेहमान के रखे हैं, उस पर अमल करो, अगर उसकी कोई ज़रूरत आप से वाबस्ता है और आप उसको पूरा कर सकते हैं तो आप उसको पूरा करने की सई करें, वरना ख़ुश उस्लूबी से समझा दें कि ये काम या ये ज़रूरत, मुझ से पूरी नहीं हो सकती

है। उस वक़्त ज़ेहन में ये रहना चाहिए कि अल्लाह दिलों के भेद जानते हैं और उस पर तो आप को अल्लाह का शुक्र अदा करना चाहिए कि अल्लाह ने आपको इज़्ज़त या रुतबा या उहदा व मन्सब अता कर रखा है, जिसकी वजह से अवामुन्नास और ख़्वास आपके पास आते हैं। कुर्ब व जवार से भी और दूर दराज़ से भी, ये सब बारी तआ़ला का फ़ज़्ल है वरना कोई किसी के पास बिला ज़रूरत नहीं जाता है, बिला किसी शदीद मजबूरी और माकूल उज़्र के मुलाक़ात से इन्कार न करना चाहिए, वरना अल्लाह तआ़ला के सामने दोनों का हाल बिल्कुल खुला हुआ है और वह जानता है कि उज़्र माकूल है या ग़ैर माकूल।

दूसरी तरफ़ अ़वाम को भी चाहिए कि मशाइख़ या असातिज़ए किराम या हुक्काम ने अपने मिलने के लिए जो औक़ात मुक़र्रर कर रखे हैं उसी वक़्त जा कर मिलें। बेवक़्त, बिला किसी ज़रूरते शदीदा के वहां न पहुंचा जाए क्योंकि किसी भी काम को करने के लिए निज़ामुलऔक़ात का होना ज़रूरी है।

रात में तलबे इजाज़त का सुन्नत तरीक़ा

आंहज़रत (स.अ.व.) का मामूल था कि अगर किसी के यहां मुलाक़ात करने के लिए रात में तशरीफ़ ले जाते तो ऐसी आवाज़ से सलाम करते कि जागने वाला सुन लेता और सोने वाला नहीं जागता। अगर कोई शदीद ज़रूरत हो तो वह अलग है।

सिद्दीके अकबर (रज़ि.) का सवाल

"لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَدْخُلُوْا بُيُوْتاً غَيْرَ مَسْكُوْنَةٍ فِيْهَا مَتَاعٌ لَّكُمْ الآية"

शाने नुज़ूल: रिवायत है कि जब इस्तीज़ान की आयत नाज़िल हुई जिनमें बग़ैर इजाज़त के किसी के मकान में दाख़िल होने की मुमानअत है तो हज़रत सिद्दीक़े अकबर (रज़ि.) ने अर्ज़ किया या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) इस मुमानअत के बाद कुरैश के तिजारत पेशा लोग क्या करेंगे, क्योंकि मदीना से मुल्के शाम तक उनके तिजारती सफ़र होते रहते हैं और रास्ता में जाबजा मुसाफ़िर ख़ाने बने होते हैं जिनमें दौराने सफ़र वह लोग क़्याम करते हैं उनमें कोई मुस्तक़िल रहने वाला नहीं होता। इस सूरत में किससे इजाज़त हासिल करेंगे और किसको सलाम करेंगे। उस वक़्त ये आयते बाला नाज़िल हुई।

"मताअ़" की तहक़ीक़

आयते मज़कूरा में लफ़्ज़ "मताअ़" इस्तेमाल किया गया है। लफ़्ज़ "मताअ़" के लुग्वी माना किसी चीज़ के बरतने, इस्तेमाल करने, उससे फ़ाएदा उठाने और मनफ़अ़त हासिल करने के हैं, और जिस चीज़ से फ़ाएदा हासिल किया जाए उसे मताअ़ कहते हैं। इस आयत में मताअ़ के लुग्वी माना ही मुराद हैं। जिसका तर्जुमा लफ़्ज़ बरत से किया गया है। यानी बरतने और इस्तेमाल करने का इस्तेहक़ाक़ है यानी मकान में अह्ले ख़ाना रहते सहते न हों। बल्कि वह सामान वग़ैरा रखने के लिए मख़सूस हो, अगर ऐसे मकान में दाख़िल होने की ज़रूरत हो ख़्वाह सर्दी व गर्मी, ख़्वाह बरसात वग़ैरा और तुम को वहां ठहरना हो या तिजारती लेन देन की जगह हो या मक़ामाते तफ़रीहात वग़ैरा हों तो बिला इजाज़त दाख़िल हो सकते हैं। बशर्तेकि वहां पर कोई मुक़ीम न हो। जाबिर इब्न ज़ैद (रज़ि.) का

भी यही क़ौल है। दाख़िला नेक नीयती और जज़्बए सादिक़ के साथ हो, दिल व दिमाग़ चोरी, ज़िना, मरदुम आज़ारी और इस तरह के दूसरे ख़्यालात से पाक हो, क्योंकि अल्लाह तआ़ला का इरशाद है कि वह उन तमाम चीज़ों को जानते हैं जिन चीज़ को हम छुपाते हैं और ज़ाहिर करते हैं, हत्ता कि वह दिलों के भेदों से भी पूरे तौर पर वाक़िफ़ है।

"ग़ैर मस्कूना" का मा हसल

आयत में जो ग़ैर मस्कूना का जुमला आया है उसके सिलसिले में इब्न ज़ैद और शअ़बी का क़ौल है कि ग़ैर मस्कूना से मुराद ताजिरों की दुकानें, उनके गोदाम और सराए, मुसाफ़िर ख़ाने और होटल वग़ैरा हैं, यानी जब ताजिरों ने दुकान खोल कर दाख़िला की उमूमी इजाज़त दे दी और फ़रोख़्त करने के लिए सामान लगा दिया तो फिर मज़ीद इजाज़त तलब करने की ज़रूरत नहीं। यही हाल होटल और सराए का है। इससे मुराद वह मकानात व मक़ामात भी हो सकते हैं जो किसी फ़र्द या क़ौम के लिए ख़ुसूसी तौर पर रिहाइशगाह न हो, बल्कि अफ़रादे क़ौम को आम इजाज़त हो, अलबत्ता जिस तब्क़ा को वहां पर जाने की या क़याम की इजाज़त न हो उनको उन मुक़ामात पर जाना जाइज़ न होगा। ग़ैर मस्कूना के मुतअल्लिक़ और भी मुख़्तलिफ़ अक़वाल हैं, मगर सब का ख़ुलासा यही निकलता है कि वह रिफ़ाहे आम की जगह है उसमें मस्जिदें, ख़ानक़ाहें और दीनी मदारिस व मकातिब भी आते हैं। इसी तरह हस्पताल, डाकख़ाना, रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, एयरपोर्ट, क़ौमी तफ़रीहात के मक़ामात और

पिकनिक की जगहें भी दाख़िल हैं। ग़रज़ रिफ़ाहे आम के सब मक़ामात इस ग़ैर मस्कूना के हुक्म में आ जाते हैं।

ये सारी जगहें वह हैं जहां हर शख़्स बिला इजाज़त आ जा सकता है। नीज़ उलमा और मशाइख़ के मवाइज़ के लिए जो मजालिस मुन्अक़िद की जाती हैं वहां भी इजाज़त की ज़रूरत नहीं है और वह मरदाना बैठकें भी इजाज़त तलबी से मुस्तसना हैं जो इसी मक़सद से बनाने वाले बनाते हैं कि जिसका जी चाहे आ कर बैठे, जैसे देहात में चौपाल होते हैं।

इजाज़त एक तो सराहतन होती हैं। दूसरे ज़िमनी, मसलन मशाइख़ के लिए इजाज़त सराहतन होती है और उनके ख़ादिमों के लिए और उमरा के साथ मुलाज़िमों के लिए इजाज़त ज़िमनन होती है। और कभी इजाज़त हुक्मी होती है, जैसे किसी हाकिम का ऐलान कि फ़लां वक़्त से फ़लां वक़्त तक ज़रूरतमंद आ कर मुलाक़ात कर सकते हैं या मशाइख़ अपने मिलने वालों के लिए औक़ात मुक़र्रर कर के तख़्ती लगा दिया करते हैं, उन औक़ात में उनके यहां इजाज़त की ज़रूरत नहीं होती है, या साहबे ख़ाना ने किसी से कह रखा हो कि मैं मौजूद रहूं या न रहूं आप मेरे कमरा में क़्याम कर सकते हैं तो ये भी इजाज़त ही है, या साहबे ख़ाना दूसरे मक़ाम पर दूर है आप के आने की इत्तिला मिलने पर वह कहलवा दें कि तशरीफ़ रखें मैं अभी आता हूं तो ये भी इजाज़त मालिके मकान ही की मानी जाएगी।

ग़ैर मस्कूना मक़ामात पर मुन्दरजा ज़ैल बातों का ख़्याल रखें

रिफ़ाहे आम के उन तमाम मक़ामात के लिए जिनका

तज़किरा गुज़रा अगर उसके ज़िम्मादारों मुतवल्लियों और हुकूमत की तरफ़ से वहां दाख़िला के लिए कुछ शराइत या पाबंदियां हों तो उस पर भी अमल करना वाजिब है। मसलन पार्क या दूसरे मक़ामात पर औक़ात मुक़र्रर हों और वहां फूल वग़ैरा तोड़ने की मुमानअ़त हो या इसी तरह दीगर ममनूअ़ चीज़ों के इस्तेमाल से रोका गया हो या रेलवे स्टेशन के लिए बग़ैर पलेट फ़ार्म टिकट के जाने की इजाज़त नहीं है तो पलेट फ़ॉम टिकट हासिल करना ज़रूरी है इसकी ख़िलाफ़ वर्ज़ी करना जाइज़ नहीं है। एयरोड्राम या एयरपोर्ट के जिस हिस्सा में हुकूमत की तरफ़ से जाने पर पाबंदी हो वहां बग़ैर इजाज़त जाना शरअ़न जाइज़ नहीं होगा। रेलवे स्टेशन एयरपोर्ट और हस्पतालों के वह दफ़ातिर और मख़सूस कमरे जो मरीज़ या दूसरे लोगों की रिहाइशगाह हैं वह ग़ैर मस्कूना के हुक्म में दाख़िल नहीं हैं, बल्कि मस्कूना के हुक्म में हैं। उनमें बग़ैर इजाज़त जाना जाइज़ न होगा। इसी तरह मसाजिद मदारिस मकातिब, ख़ानक़ाहों, डाकख़ानों वग़ैरा में जो कमरे वहां के मुन्तज़िमीन के या दूसरे लोगों की रिहाइश के लिए मख़सूस हों, मसलन मसाजिद में इमाम, मुअज़्ज़िन की रिहाइशगाहें या ख़ानक़ाहों में मुन्तज़िमीन और ख़ादिमों के कमरे, इसी तरह मदारिस में मुदर्रिसीन के कमरे, ये सब ग़ैर मस्कूना में दाख़िल नहीं हैं। उनके कमरों में बग़ैर इजाज़त के दाख़िला जाइज़ नहीं है।

अब सवाल है कि इन मक़ामात में सलाम करें या न करें और करें तो किसको करें। इस सिलसिले में हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) का वाक़िआ पेशे नज़र रखना

मुनासिब होगा। आप ने रसूले अकरम (स.अ.व.) से दरयाफ़्त किया था इजाज़त के सिलसिला में, फ़रमाया कि इन मक़ामात में इजाज़त की ज़रूरत नहीं है। बाक़ी सलाम की भी ज़रूरत है या नहीं? बज़ाहिर तो न होना चाहिए इसलिए कि आयत में "تُسَلِّمُوْا عَلٰى اَهْلِهَا الآية" फ़रमाया गया है कि घर वालों को सलाम करो, जब उन घरों में या उन जगहों में कोई न रहा तो सलाम कैसा और किसको?

लेकिन यहां हज़रत अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि.) की हदीस है–

"عَنْ نَافِعٍ أَنَّ عَبْدَاللّٰهِ بْنَ عُمَرَ قَالَ اِذَادَخَلَ الْبَيْتَ غَيْرَ الْمَسْكُوْنِ فَلْيَقُلْ اَلسَّلَامُ عَلَيْنَا وَعَلٰى عِبَادِ اللّٰهِ الصَّالِحِيْنَ"

हज़रत नाफ़ेअ़ से रिवायत है कि अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि.) ने फ़रमाया कि जब कोई ख़ाली मकान में दाख़िल हो तो वह कहे– "اَلسَّلَامُ عَلَيْنَا وَعَلٰى عِبَادِ اللّٰهِ الصَّالِحِيْنَ"

ये दुआ़ए सलामती अपने लिए और अल्लाह तआ़ला के तमाम नेक बंदों के लिए होगी। अगर कोई क़ासिद के जरीए बुलाया गया है तो उसको मज़ीद इजाज़त की ज़रूरत नहीं। हदीस है–

"اِذَادُعِيَ أَحَدُكُمْ فَجَاءَ مَعَ الرَّسُوْلِ فَاِنَّ ذَالِكَ اِذْنٌ"

यानी जिस शख़्स को बुलाया जाए और क़ासिद के साथ ही आ जाए यही उसके लिए इजाज़त है। अगर ख़ुदा न ख़्वास्ता अचानक कहीं कोई हादसा पेश आ जाए, मसलन आग लग जाए या मकान गिर जाए या चोर डाकू चढ़ आयें या अज़दहा सांप निकल आए या उस क़िस्म का और कोई वाक़िआ पेश आ जाए तो ऐसे वक़्त

में इजाज़त के बग़ैर घर में दाख़िल हो सकते हैं, चूंकि इसके अन्दर हिफ़ाज़ते नफ़्स है और जिस तरह हर इन्सान के लिए अपनी जान की हिफ़ाज़त फ़र्ज़ है उसी तरह बवक़्ते ज़रूरत दूसरे की जान बचाना भी फ़र्ज़ हो जाता है, जब कि वह उस पर क़ादिर हो, ये एक समाजी फ़रीज़ा है जो हर इंसान पर आयद होता है।

टेलीफ़ोन करने का इस्लामी तरीक़ा

मुफ़्ती शफ़ी साहब देवबंदी (रह.) मुफ़्तिये आज़म पाकिस्तान व साबिक़ मुफ़्ती दारुलउलूम देवबंद ने इस्तीज़ान से मुतअल्लिक़ चंद दूसरे मसाइल का भी ज़िक्र फ़रमाया है। वह तहरीर करते हैं कि इस्तीज़ान के अहकामे शरईया का अस्ल मक़्सद लोगों को इज़ा रसानी से बचाना और हुस्ने मुआशरत के आदब सिखाना है। तो इस तरह की इल्लत से ज़ैल के अहकाम भी समझ में आते हैं।

(1) किसी शख़्स को ऐसे वक़्त पर टेलीफ़ोन पर मुख़ातब करना जो आदतन उसके सोने या दूसरी ज़रूरीयात या नमाज़ में मशगूल होने का वक़्त है, बिला ज़रूरते शदीदा के जाइज़ नहीं है। क्योंकि इसमें भी इज़ा रसानी है जो किसी के घर में बग़ैर इजाज़त के दाख़िल होने और उसकी आज़ादी में ख़लल डालने से होती है।

(2) जिस शख़्स से टेलीफ़ोन पर बात चीत अक्सर करना हो तो मुनासिब ये है कि उससे दरयाफ़्त कर लिया जाए कि आप से टेलीफ़ोन पर बात करने में किस वक़्त सहूलत होगी। जो वक़्त वह बताए उसकी पाबंदी मुनासिब है।

(3) टेलीफ़ोन पर अगर तवील बात करनी हो तो पहले

मुख़ातब से दरयाफ़्त कर लिया जाए कि आपको फुरसत हो तो अपनी बात मैं अर्ज़ करूं, क्योंकि अक्सर ऐसा होता है कि टेलीफ़ोन की घंटी बजने पर आदमी तबअन मजबूर होता है कि ख़ुद मालूम करे कि कौन क्या कहना चाहता है। और वह किसी भी हाल में हो, अपने ज़रूरी काम में हो तो उसे छोड़ कर टेलीफ़ोन उठाता है। कोई बेरहम आदमी उस वक़्त अगर तवील गुफ़्तगू शुरू कर दे तो तकलीफ़ महसूस होती है इसलिए अगर वह उस वक़्त मना कर दे कि मुझे इस वक़्त फुरसत नहीं है तो गुफ़्तगू न करे और न ही बुरा माने क्योंकि "وَاِنْ قِيْلَ لَكُمُ ارْجِعُوْا فَارْجِعُوْا" के तेहत आता है, यानी अगर तुम से कहा जाए कि वापस हो जाओ तो वापस हो जाना चाहिए।

(4) बाज़ लोग टेलीफ़ोन की घंटी बजती है और वह कोई परवाह नहीं करते और न ही इस बात की ज़हमत गवारा करते हैं कि मालूम करें कि कौन है और क्या कहना चाहता है। ये इस्लामी अख़लाक़ के ख़िलाफ़ और बात करने वाले की हक़ तल्फ़ी है। जैसा कि हदीस शरीफ़ में आता है– "اِنَّ لِزَوْرِكَ عَلَيْكَ حَقٌّ" यानी जो शख़्स आप से मुलाक़ात करने आए उसका तुम पर हक़ है। उससे बात करो और बिला ज़रूरते शदीदा मुलाक़ात से इन्कार न करो। इसी तरह जो आदमी आप से टलीफ़ोन पर बात करना चाहता है उसका हक़ है कि आप उसको जवाब दें चाहे उससे तवील गुफ़्तगू न करें, अपना उज़्र ब्यान करें और उसको ये उज़्र क़बूल भी कर लेना चाहिए।

ये बात ज़ेहन नशीन रहे कि ये तमाम मसाइल व तरीक़ा इस्तेहबाबी और आदाबी हैं, मगर जमहूर उलमा के

नज़दीक वजूबी हैं। ख़तीब (रह.) ने भी इसकी ताईद की है और इमाम क़ुरतबी (रह.) ने भी अपनी तफ़सीर में यही लिखा है और यही अक्सर उलमा का क़ौल है। मक़्सद सिर्फ़ इतना है कि जाहिलाना रविश की बंदिश हो जाए, जाहिलों की तरह लोगों के घरों में बग़ैर इजाज़त दाख़िल होना या लोगों के दरवाज़ों पर जा कर चीख़ना या ज़ोर ज़ोर से किवाड़ों को पीटना और बार बार कुंडी बजाना या घंटी दबाना या दरवाज़ों पर ईंट पत्थर मारना ये तमाम उमूर बदतहज़ीबी और नाशाइस्तगी पर दलालत करते हैं और इन उमूर से साहबे ख़ाना को तकलीफ़ पहुंचती है। हर इंसान को इस तरह की हरकतों से बचना ज़रूरी है। ज़मानए जाहिलीयत में बिला इजाज़त व बेतकल्लुफ़ एक दूसरे के घर में घुस जाते थे और बसा औक़ात घर वालों पर या उनकी औरतों पर नादीदनी हालत में निगाहें पड़ जाती थीं। अल्लाह तआला ने उनकी इस्लाह के लिए ये उसूल मुक़र्रर कर दिए कि हर शख़्स को अपने रहने की जगह तख़्लिया का हक़ हासिल है और किसी दूसरे शख़्स के लिए जाइज़ नहीं कि वह उसके तख़्लिया में उसकी मर्ज़ी के बग़ैर ख़लल अंदाज़ हो।

आयते क़ुरआनी मअ़ तर्जुमा

"يَا اَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْا. لِيَسْتَاذِنْكُمُ الَّذِين مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ
وَالَّذِيْنَ لَمْ يَبْلُغُوْا الْحُلُمَ مِنْكُمْ ثَلٰثَ مَرَّاتٍ مِنْ قَبْلِ صَلٰوةِ
الْفَجْرِ وحِيْنَ تَضَعُوْنَ ثِيَابَكُمْ مِّنَ الظَّهِيْرَةِ وَمِنْ بَعْدِ صَلٰوةِ
الْعِشَآءِ ط ثَلٰثُ عَوْرَاتٍ لَّكُمْ لَيْسَ عَلَيْكُمْ وَلَا عَلَيْهِمْ جُنَاحٌ
بَعْدَهُنَّ طَوَّافُوْنَ عَلَيْكُمْ بَعْضُكُمْ عَلٰى بَعْضٍ. كَذٰلِكَ
يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْآيَاتِ ط وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ وَاِذَا بَلَغَ

اَلْاَطْفَالُ مِنْكُمُ الْحُلُمَ فَلْيَسْتَاْذِنُوْا كَمَا اسْتَاْذَنَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ ؕ وَ اللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ"

(پارہ–۸ ا النور)

तर्जुमा: ऐ ईमान वालो! तुम्हारे ममलूकों को और जो तुम में हद्दे बुलूग़ को नहीं पहुंचे उनको तीन वक़्तों में इजाज़त लेना चाहिए। नमाज़े सुब्ह से पहले और जब दोपहर को अपने कपड़े उतार दिया करते हो, और इशा के बाद ये तीन वक़्त तुम्हारे पर्दा के हैं। इन औक़ात के सिवा न तुम पर कोई इलज़ाम है और न उन पर कुछ इल्ज़ाम है। वह बकसरत तुम्हारे पास आते जाते रहते हैं। कोई किसी के पास और कोई किसी के पास, इसी तरह अल्लाह तआला तुम से अहकाम साफ़ साफ़ ब्यान करता है और अल्लाह जानने वाला, हिकमत वाला है। और जिस वक़्त तुम में के वह लड़के हद्दे बुलूग़ को पहुंचें तो उनको भी इसी तरह इजाज़त लेना चाहिए, जैसा कि उनसे अगले लोग इजाज़त लेते हैं। इसी तरह अल्लाह तुम से अपने अहकाम साफ़ साफ़ ब्यान करता है और अल्लाह तआला जानने वाला और हिकमत वाला है।

(**तर्जुमा:** हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह.)

हज़रत इब्न अब्बसा (रज़ि.) से रिवायत है कि एक मरतबा हुज़ूर (स.अ.व.) ने किसी अन्सारी लड़के को हज़रत उमर (रज़ि.) के पास उनको बुलाने के लिए दोपहर के वक़्त भेजा। हज़रत उमर (रज़ि.) सो रहे थे। लड़का घर में घुस गया और उसने जा कर हज़रत उमर (रज़ि.) को बेदार किया। हज़रत उमर (रज़ि.) का कपड़ा कुछ खिसक गया था। तो आप (रज़ि.) के दिल में ये ख़्याल आया कि

काश इनके आने जाने के लिए भी कोई हुक्म नाज़िल हो जाता, इसके बाद आप हुज़ूर (स.अ.व.) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो हुज़ूर (स.अ.व.) ने आयते मज़कूरा सुनाई। ये रिवायत इस आयत के शाने नुज़ूल के सिलसिला में आई है।

तख़्लिया और उसकी ज़रूरत

इंसान बहरहाल इसांन है। जैसे वह अपने हम जिन्सों में बैठ कर आराम महसूस करता है उसी तरह कभी तन्हाई चाहता है कि वह आराम करे, चुनांचे दिन रात के कुछ औक़ात में रोज़ाना ही ऐसा होता है। ऊपर की आयत में कुरआन ने उन औक़ात के सिलसिला में हिदायात दी हैं कि उनका लिहाज़ ज़रूरी है और ये इंसानी फ़ितरत के मुताबिक़ है।

बाप हो या माँ, बेटा हो या बेटी, भाई हो या बहन, ख़ादिम हो या ख़ादिमा ग़रज़ कोई भी रिश्तादार हो, वह किसी की मुदाख़लत को इस तन्हाई के वक़्त में पसंद नहीं करता है। कोई मुहज़्ज़ब आदमी अपने अइज़्ज़ा व अक़ारिब और ख़ुद्दाम के सामने मुक़ारबते सिन्फ़ी की हिम्मत नहीं करता है और न हया व शर्म उसको इसकी इजाज़त देती है फिर सोते वक़्त आम तौर पर थोड़ा बेतकल्लुफ़ हो जाता है। बहुत सारे कपड़े उतार कर लेटता और सोता है। ख़्वाह गर्मी हो, ख़्वाह सर्दी हो, ख़ास तौर से गर्म मुमालिक में गर्मी के मौसम में ग़ैर ज़रूरी कपड़ा उतार देना ज़रूरी होता है। बाज़ औक़ात नींद में कपड़े सत्र से हट जाते हैं। इसलिए उन औक़ाते मख़्सूसा में आने जाने वालों के लिए अक़्लन भी एहतियात ज़रूरी है।

आ़म आने जाने वालों, आ़क़िल व बालिग़ और आज़ादों के वास्ते हुक्म पहले गुज़र चुका है कि जब घर में आयें इजाज़त ले कर दाख़िल हों। घर ज़नाना हो या मर्दाना हो। आने वाला मर्द हो या औरत, सब के लिए हुक्म आ़म है। इजाज़त को वाजिब और सलाम को सुन्नत क़रार दिया गया है। मगर यह अहकामे इजाज़त ग़ैरों के लिए थे। मगर इस आयते मज़कूरा में एक दूसरे से इजाज़त के अहकाम का ब्यान है जिनका तअल्लुक़ उन अक़ारिब व महारिम से है जो आदतन एक ही घर में रहते सहते हैं और हर वक़्त आते जाते हैं और एक दूसरे के पास बेरोक टोक चले आना और आपस में ख़ल्त मल्त होना इंसानी ज़रूरीयात की तकमील के लिए कभी ज़रूरी भी होता है। उसकी बंदिश नहीं की गई थी और उन हज़रात से औरतों का परदा भी ऐसा गहरा नहीं होता है। ऐसे लोगों के लिए अगरचे घर में दाख़िल हाने के वक़्त इसका हुक्म है कि इत्तिला कर के या कम अज़ कम क़दमों की आहट को ज़रा तेज़ कर के या खांस खंखार कर घर में दाख़िल हों। ये इजाज़त ऐसे अक़ारिब के लिए वाजिब नहीं है बल्कि मुस्तहब है जिसको तर्क करना मकरूहे तंज़ीही हैं लेकिन एक घर के रहने वाले भी चूंकि बाज़ औक़ात तन्हाई को पसंद करते हैं। इसलिए बाहम एक दूसरे की मुदाख़लत बग़ैर इजाज़त के आपस में नागवारी का बाइस होती है। इस मुदाख़लते बेजा से रोकने के लिए ये अहकामात ब्यान किए गए हैं।

घर में अन्दरूनी राहत का एहतेमाम

वह बच्चे जो हद्दे बुलूग़ को नहीं पहंचे और जिनसे

आदतन परदा भी नहीं किया जाता, और वह बिला ज़रूरत घर में चक्कर लगाते रहते हैं। ख़्वाह वह बच्चे अपने घर के हों या बेगाने के यहां तक कि अपनी औलाद हों या भाई बहन की या ग़ैरों की औलाद हो।

बांदी, गुलाम, नौकर या ख़ादिम से भी कोई ख़ास एहतियात नहीं की जाती है कि ये पेशे ख़िदमत होते हैं। हर वक़्त अपने मालिक के पास आते रहते हैं। ये हरकत ख़नगी तहज़ीब के ख़िलाफ़ है। किसी का भी दिल नहीं चाहता कि सोते वक़्त कोई बच्चा या बच्ची बेरोक टोक बग़ैर इजाज़त के अन्दर चला आए। क्योंकि बसा औक़ात ऐसी हालत में होता है जिसके ज़ाहिर होने से शरमाता है। कम अज़ कम उसकी बेतकल्लुफ़ी और आराम में इससे ख़लल पड़ना लाज़मी है। इसलिए ये आयात ख़ुसूसी इस्तीज़ान के अहकाम में आई हैं कि उन तीन औक़ात में कोई किसी के पास बग़ैर इजाज़त न जाया करें। ये हुक्म उन घरों का है कि मकान तो एक है मगर घर में कई फ़ैमलियां अलग अलग कमरों में रहती हों। घर का दरवाज़ा और सेहन एक ही हो, अल्लाह! अल्लाह! मुसलमानों के घर के अन्दरूनी राहत का एहतेमाम किस दर्जा शरीअत को पेशे नज़र है। कितने कितने जुज़्ईयात के अहकाम इसी गरज़ के लिए सादिर फ़रमाए जा रहे हैं। ये तीन औक़ात ये हैं–

(1) सुब्ह की नमाज़ से पहले।

(2) दोपहर को आराम के वक़्त।

(3) और इशा के बाद के औक़ात जब आदमी कामों से फ़ारिग़ हो कर सोने चलता है।

आदतन आम तौर पर ये तीन ही औक़ात तख़्लिया और इस्तिराहत के हैं, और इन औक़ात में हर इंसान आज़ाद और बेतकल्लुफ़ रहना चाहता है। बेफ़िक्री से न मालूम अपने घर में किस हालत में हो। और कभी कभी आदमी इन औक़ात में अपनी बीवी के साथ बेतकल्लुफ़ इख़्तिलात में मशगूल होता है। इसीलिए अल्लाह तआला ने इंसानों की ज़रूरीयात को देखते हुए फ़रमाया है कि ऐ ईमान वालो! तुम अक़ारिब को यहां तक कि समझदार सियाना, बा–शुऊर, नाबालिग़ बच्चों और ख़ादिमों को भी समझा दो कि इन तीन औक़ात में बग़ैर इत्तिला के चुप चाप न आया करें। जैसा कि बच्चों की आदत हुआ करती है। वह इजाज़त को जानते भी नहीं कि वह क्या चीज़ है। इसलिए तुम उनको सिखाओ कि इन तीन वक़्तों में ग़ैर तो ग़ैर अपने घर में भी दूसरे कमरों में अगर वहां पर कोई रहता हो तो बग़ैर इजाज़त न घुस जाया करें।

एक सवाल और उसका जवाब

यहां पर सवाल ये पैदा होता है कि इस आयते मज़कूरा में बालिग़ मर्द औरत को इस्तीज़ान का हुक्म देना और उसका पबंद बनाना तो समझ में आता है कि यक़ीनन ऐसा ही होना चाहिए। मगर नाबालिग़ बच्चे जो शरअ़न किसी हुक्म के मुकल्लफ़ नहीं हैं। उनको इजाज़त का पाबंद करना बज़ाहिर उसूले फ़िक़्ह के ख़िलाफ़ मालूम होता है।

इसका जवाब समझने से पहले चंद बातें समझने की हैं। औलाद इंसान के पास एक अमानत है उसके सिलसिले में उस पर बहुत सी शरई, अख़लाक़ी और

क़ानूनी ज़िम्मादारियां आएद होती हैं। इस्लाम चाहता है कि इंसान के अन्दर शुरू ही से उन ज़िम्मादारियों का एहसास और शुऊर ताज़ा रहे और वह उनसे उहदा बर आ होने की कोशिश करे। जहां इस्लाम ने वालिदैन के हुकूक़, अल्लाह तआ़ला के हुकूक़ के बाद ताकीद के साथ ज़िक्र फ़रमाए हैं। उसी तरह वालिदैन पर भी शरीअ़त ने कुछ हुकूक़ रखे हैं। जो ज़ैल के वाक़िआ़ और अहादीस से मालूम होंगे–

एक शख़्स अपने बेटे को लेकर हज़रत फ़ारूक़े आज़म (रज़ि.) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा कि ये मेरा बेटा नाफ़रमान है। हज़रत उमर (रज़ि.) ने उस लड़के से फ़रमाया कि क्या तुझ को अपने बाप की नाफ़रमानी करने में अल्लाह से डर नहीं लगता है? और उसके बाद बाप के हुकूक़ पर आप ने रौशनी डाली, लड़के ने कहा या अमीरुलमोमिनीन क्या लड़के का भी बाप पर कोई हक़ है या नहीं, आप ने फ़रमाया क्यों नहीं, ज़रूर है। बाप पर पहला हक़ ये हे कि उसकी माँ का जिससे वह शादी कर रहा है, अच्छा इंतिख़ाब करे, यानी वह औरत जिससे वह शादी कर रहा है सीरत व सूरत और अख़लाक़ व किरदार में बेहतर हो, किसी मख़दूश औरत से शादी न करे, ताकि औलाद को अपनी माँ की वजह से ज़िल्लत व रुसवाई से दो चार न होना पड़े, फिर जब औलाद अल्लाह तआ़ला दे तो उसका अच्छा नाम रखे, जब वह पढ़ने के लाइक़ हो तो किताबुल्लाह की तालीम दे। उस लड़के ने ये सुन कर कहा– अल्लाह की क़सम न तो उन्होंने मेरी माँ का अच्छा इंतिख़ाब किया और न ही मेरा अच्छा नाम

तजवीज़ किया, क्योंकि मेरा नाम गंदगी का कीड़ा, फिर न मुझे किताबुल्लाह की तालीम दी। हज़रत उमर (रज़ि.) ने उसके बाप को ख़िताब कर के फ़रमाया तु कहता है कि मेरा बेटा नाफ़रमानी करता है। इससे पहले कि वह तेरी नाफ़रमानी करे तूने उसकी हक़ तल्फ़ी की है, मेरे पास से हटो। फिर अहादीस से मालूम होता है कि बीवी से तअ़ल्लुक़ के वक़्त इंसान के अन्दर महज़ अपनी ख़्वाहिशे नफ़्स की तकमील ही का जज़्बा कार फ़रमा न हो, क्योंकि ये एक नफ़्सियाती हक़ीक़त है कि बीवी से तअल्लुक़ के वक़्त इंसान के अन्दर जिस क़िस्म के जज़बात होंगे, औलाद पर लाज़िमन उनका असर पड़ेगा। बल्कि तस्कीने नफ़्स के साथ सालेह और नेक औलाद की ख़्वाहिश भी होनी चाहिए और उसके लिए दिल में तड़प भी होना ज़रूरी है, जिन्सी जज़बात की शिद्दत के वक़्त ख़ुदा को याद रखना और उससे दुआ़ करना मुश्किल नहीं है, इसका तअ़ल्लुक़ नीयत और इरादा से है, मुसलमान वह है जो उस हाल में भी ख़ुदा को न भूले और शुरू से अपने लिए, अपनी औलाद के लिए दुआ़ करता रहे, तो उस पर शैतान का इस तरह तसल्लुत और ग़लबा नहीं होता है कि वह उसे राहे रास्त से बिल्कुल फेर दे। बल्कि उसको और उसकी औलाद को ख़ुदा की हिफ़ाज़त हासिल रहेगी। बुख़ारी शरीफ़ की एक हदीस में है– "لَمْ يَضُرُّهُ الشَّيْطَانُ وَلَمْ يُسَلِّطْهُ" यानी जो शख़्स शुरू ही से दुआ़ करता रहेगा उसकी औलाद को शैतान नुक़सान नहीं पहुंचाएगा और उस पर उसका तसल्लुत न होगा। बच्चा सलाह व तक़वा का जौहर ले कर पैदा होगा, वह दीदा व दानिस्ता अपनी ग़लतियों

और कोताहियों पर इसरार नहीं करेगा बल्कि जब कभी शैतान के ज़ेरे असर या नफ़्से अम्मारा के तक़ाज़ा से कोई लग़ज़िश होगी वह फ़ौरन ख़ुदा की तरफ़ रुजूअ़ कर के अपनी कोताहियों की मआ़फ़ी चाहेगा। इसी तरह औलाद की तरबियत के बारे में भी कुछ अहादीस आई हैं।

तिर्मिज़ी (रह.) ने हज़रत ऐयूब इब्न मूसा (रह.) से मुरसलन रिवायत की है कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने इरशाद फ़रमाया कि बाप की तरफ़ से सब से बेहतर अतीया हुस्ने अदब है। तिर्मिज़ी की दूसरी हदीस में आया है कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि इंसान अपने बेटे को अदब सिखाए ये उसके लिए बदरजहा बेहतर है इससे कि वह एक साअ़ ख़ैरात करे।

इन अहादीस व वाक़िआ़त से मालूम होता है कि शरीअ़ते इस्लाम ने वालिदैन पर बच्चों की तालीम व तरबियत और उसके हुस्ने अदब पर ज़्यादा ध्यान दिया है, इस्लाम चाहता है कि इंसान के अन्दर शुरू से दीनी और दुन्यवी ज़िम्मादारियों का शुऊर व एहसास ताज़ा रहे और वालिदैन अपने बच्चों की तरबियत इस्लाम की रौशनी में करें। मज़कूरा सवाल का जवाब यही है कि उसके मुख़ातब दरअस्ल बालिग़ मर्द औरत ही हैं जैसा कि कुरआन करीम में अक्सर जगह मुख़ातब मर्द ही हैं। बजुज़ मख़सूस मसाइल के औरतें भी उन मसाइल में ज़िमनन शामिल हो जाती हैं। यहां पर बालिग़ीन ही मुख़ातब हैं कि वह अपने छोटे बच्चों की तालीम व तरबियत पर तवज्जोह रखें, मज़कूरा तीन औक़ात में बग़ैर इजाज़त बालिग़ मर्द व औरत के कमरे में न जायें। वाक़िआत व तजरबात से ये बात साबित

हो चुकी है कि बच्चों की तालीम व तरबियत का बेहतरीन ज़माना उनकी कमसिनी और लाशुऊरी के ऐयाम हैं। कच्ची उम्र में जो बात बच्चों के ज़ेहन में जम जाती है, शुऊर और अक़्ल के पुख़्ता होने पर भी किसी सूरत से उनके ज़ेहनों से जाती नहीं हैं।

लफ़्ज़े "जुनाहुन"

मज़कूरा आयत में ये अलफ़ाज़ आते हैं कि इन तीन औक़ात के अलावा दूसरे औक़ात में बिला इजाज़त आने जाने के लिए तुम पर जुनाहुन (गुनाह) नहीं है। अगरचे लफ़्ज़ जुनाहुन आया है जो उमूमन गुनाह के माना में इस्तेमाल होता है, मगर कभी मुतलक़न हरज और मुज़ाएक़ा के माना में आता है, यहां पर ला जुनाहा के माना ये है कि तुम्हारे लिए कोई मुज़ाएक़ा और तंगी नहीं है। इससे बच्चों के मुकल्लफ़ और गुनाहगार होने का शुब्हा भी ख़त्म हो जाता है।

बच्चों को डांटने की शरई हैसियत

इन तीन औक़ात के अलावा (फ़ज्र से पहले, दोपहर के बाद और इशा के बाद) दूसरे औक़ात में नाबालिग़ बच्चे और घर के ख़ादिम, औरतों और मर्दों के कमरा में या उनके तख़्लिया की जगहों में बिला इजाज़त आ जा सकते हैं। अगर इस सूरत में तुम किसी नामुनासिब हालत में हो, सत्रे ग़लीज़ खुली हुई हो या बाहम मुबाशरत की सूरत में मुब्तला हो और वह बिला इजाज़त के आ जायें तो तुम को डांटने या सज़ा देने का कोई हक़ नहीं है। क्योंकि ये तुम्हारी अपनी हिमाक़त और बद तहज़ीबी होगी कि काम काज के औक़ात में अपने आपको ऐसी नामुनासिब

हालत में रखो, और चूंकि ये औक़ात उमूमन पर्दा के नहीं होते हैं, इसलिए उनमें आज़ाए मस्तूरा का छुपाए रखना, तुम्हारा दीनी और अख़लाक़ी फ़रीज़ा है। अलबत्ता अगर वह तख़्लिया के मज़कूरा तीन औक़ात में तुम्हारे तरबियत व तालीम के बावजूद बिला इजाज़त आ जायें तो वह कुसूरवार हैं, उनको सज़ा दी जा सकती है। अगर तुम ने अपने बच्चों और ख़ादिमों को ये तहज़ीब नहीं सिखाई तो तुम गुनहगार होगे। हज़रत इब्ने अब्बसा (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मैंने अपनी लौंडी को भी इसका पाबंद कर रखा है कि उन तीन औक़ात में बग़ैर इजाज़त मेरे पास न आया करें।

लफ्ज़ ''औरात'' की तहक़ीक़

आयत में जो "ثَـلٰـثُ عَوْرَاتٍ لَّـكُمْ" मज़कूर है कि तीन औक़ात तुम्हारे लिए औरात हैं। औरत उर्दू में तो सिन्फ़े नाज़ुक के लिए बोला जाता है मगर अरबी में उसके माना परदा और ख़तरा की जगह के हैं और ये लफ़्ज़ उस चीज़ के लिए भी बोला जाता है जिसका खुल जान आदमी के लिए बाइसे शर्म व हया हो या जिसका ज़ाहिर होना उसको नागवार हो। ये सब माना बाहम मुनासबत रखते हैं। और आयत के मफ़हूम में किसी हद तक शामिल हैं, मतलब ये है कि इन औक़ात में लोग तन्हा या अपनी बीवियों के साथ ऐसी हालतों में आम तौर पर होते हैं जिनमें घर के बच्चों और ख़ादिमों को अचानक तुम्हारे पास आ जाना ना–मुनासिब है। लिहाज़ा उनकी तरबियत करो कि उन तीन औक़ात में जब वह तुम्हारी ख़लवतों में आने लगें तो पहले इजाज़त तलब कर लिया करें। चुप

चाप ख़ामोशी के साथ न घुस जाया करें। हो सकता है कि तुम परदा की हालत में न हो और ये आना दोनों के लिए शर्म की बात साबित हो और नागवारे ख़ातिर भी।

उन चीज़ों में जो बकसरत पेश आती हैं और जिससे बचना और महफ़ूज़ रहना मुश्किल हो तो शरीअ़त उसमें सहूलत के कुछ पहलू निकाल देती है। मसलन बिल्ली कसरत से घरों में आती है, बल्कि उसको पालते भी हैं और कभी वह खाने और पीने की चीज़ों में मुंह डाल देती है। अगर शरीअ़त उसके मुंह डाली हुई चीज़ों को नजिस या हराम कर देती तो यक़ीनन लोगों को उससे बहुत परेशानी पेश आती। इसलिए शरीअ़त ने कुछ सूरतें सहूलत की निकाल दी हैं। इसी तरह यहां पर बच्चों और ख़ादिमों का मस्अला है कि बार बार की इजाज़त तलबी से बहुत दुश्वारी और परेशानी पेश आ सकती है।

नोटः लेकिन ये सहूलत के पहलुओं के निकालने का काम सिर्फ़ उलमाए मुजतहिदीन का है, हर शख़्स को इस बाब में इजतिहाद की इजाज़त नहीं है। मसलन कोई ये दलील पेश करे कि कुत्ता भी पाला जाता है वह भी घर में रहता है, चीज़ों में मुंह डालता है, लिहाज़ा उसका जूठा ममनूअ़ नहीं होना चाहिए। तो ऐसा क़यास क़तअ़न ग़लत होगा। क्योंकि शरीअ़त ने कुत्ता पालने की इजाज़त नहीं दी है।

तीन औक़ात ही की तख़्सीस नहीं

इस बाब में फ़ुक़हा (रह.) ने सराहत कर दी है कि उन्ही तीन औक़ात की तख़्सीस नहीं है, नुज़ूले कुरआन के वक़्त आदते आम्मा इन्ही तीन औक़ात में आराम की

थी। बाक़ी अगर किसी दूसरे मुल्क में ख़लवत के औक़ात दूसरे हों तो उन्ही औक़ात का एतेबार किया जाएगा। और उसके मुवाफ़िक़ बच्चों और ख़ादिमों को तरबियत दी जाएगी। और यहां औक़ाते नींद और तख़्लिया को मुतऐयन नहीं किया गया है बल्कि नस्स में उर्फ़ें आम की रिआयत रखी गई है और उस उर्फ़ें आम का फ़ाएदा उन मुमालिक को पहुंचेगा जहां चौबीस घंटा या उससे ज़्यादा का दिन या रात होती है। मसलन ग्रीन लैंड (Green Land) या आईस लैंड (Ice Land) इन मुमालिक में तीन माह का दिन होता है और तीन माह की रात होती है। इनमें हर के लिए औक़ात मुकर्रर हैं। इसी तरह नमाज़ रोज़ा की भी घंटों से तअ़यीन कर ली जाती है। लिहाज़ा यहां पर जो औक़ात नींद के मुक़र्रर हैं उसी हिसाब से बच्चों और ख़ादिमों को इजाज़त वग़ैरा की तरबियत दी जाएगी।

मसाइले मज़कूरा में घर वालों के लिए खुसूसी रिआयत है। मसलन किसी शख़्स ने अन्दरूने कमरा परदा या चिक उठा रखी है और ख़ुद सामने ही बैठ गया या खुले दालान में बग़ैर किसी हिजाब के बैठा या लेटा हुआ है तो घर वालों को अब किसी मज़ीद इजाज़त की ज़रूरत नहीं है। हां अगर उसने परदा डाल लिया है या दरवाज़ा बंद कर लिया तो फिर इजाज़त लेना घर वालों के लिए भी ज़रूरी हो गया, मगर जिसको उसने ख़ुसूसी तौर पर इजाज़त दे दी हो कि तुम मेरे पास बिला रोक टोक आ सकते हो वह उससे मुस्तस्ना रहेगा।

हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) की रिवायत तफ़सीर इब्न कसीर ने बसनदे इब्न अबी हातिम नक़्ल की है कि हज़रत

अब्दुल्लाह इब्न अब्बास (रज़ि.) ने फ़रमाया कि तीन आयात ऐसी हैं जिन पर लोगों ने अमल करना छोड़ दिया है। एक तो आयते इस्तीज़ान है। दूसरी आयत– "اِنَّ اَكْرَمَكُمْ عِنْدَاللّٰهِ اَتْقَاكُمْ" जिसमें बतलाया गया है कि सब से ज़्यादा मुकर्रम व मुअ़ज़्ज़म वह शख़्स है जो सब से ज़्यादा मुत्तक़ी हो। मगर आज कल मुअ़ज़्ज़ज़ व मुकर्रम वह समझा जाता है जिसके पास कुछ ज़रे दुनिया है। चाहे वह औसाफ़ हक़ीक़ीया से बिल्कुल बेबहरा हो। तीसरी आयत– "وَاِذَا حَضَرَ الْقِسْمَةَ اُولُوالْقُرْبٰى (الاٰية)" जिसमें तक़सीमे मीरास के वक़्त वारिसों को इसकी हिदायत की है। अगर माले वरासत की तक़सीम के वक़्त कुछ ऐसे रिश्तादार भी मौजूद हों जिनका ज़ाबतए मीरास से कोई हिस्सा नहीं बैठता उनको भी कुछ दे दिया करो, ताकि उनकी दिल शिकनी न हो।

❖❖❖

खुलासए किताब

नम्बर (1) अगर आप किसी के यहां जाएें तो उसके कमरे या मकान में बिला इजाज़त ना घुस जाएें, बल्कि ज़रूरी है कि पहले इजाज़त ले लें।

(2) अगर दस्तक देनी हो तो इस्लामी तरीक़े के मुताबिक़।

(3) इजाज़त लेने का इस्लामी तरीक़ा ये है कि दरवाज़े के क़रीब खड़े हो कर आप कहें अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह, क्या हाज़िर हो सकता हूं?

(4) अगर जवाब न आए तो दूसरी, तीसरी मरतबा आप उसी तरह सलाम कीजिएगा फिर आप समझ लीजिए कि इस वक़्त मुलाक़ात का मौक़ा नहीं है, कोई उज़्र है, लिहाज़ा वापस हो जाएँ और बुरा हरगिज़ न मानें।

(5) इजाज़त लेते वक़्त आप आड़ में खड़े हों। ऐसी जगह न खड़े हों कि अन्दर से सामना हो, अलबत्ता साहबे मकान जिनसे इजाज़त लेनी है वह सामने हों तो आप सलाम करें और हाज़िर होने की इजाज़त ले लें।

(6) अन्दर झांकना मायूब है, आंहज़रत (स.अ.व.) ने इसकी सख़्त मुमानअत फ़रमाई है।

(7) मिलने पर साहबे ख़ाना को मजबूर नहीं करना चाहिए।

(8) ख़ुद अपने मकान में भी सलाम कर के और पुकार

के जाओ। घर में पहुंच कर घर के आदमियों को सलाम करो।

(9) अगर अन्दर से पूछा जाए कौन है? तो अपना पूरा नाम बताऐं ये ना कहें "मैं" अन्दर वाला क्या जानेगा "मैं" कौन है।

(10) आंहज़रत (स.अ.व.) ने एक साहबी (रज़ि.) को हिदायत फ़रमाई कि नाग़ा कर के मिलने जाया करो। इससे मुहब्बत बढ़ेगी।

(11) खाने या नाश्ता के वक़्त किसी के यहां न जायें अगर किसी ज़रूरत से ऐसे वक़्त जाना पड़े तो फ़ारिग़ हो कर जाऐं, अगर फ़राग़त का मौक़ा न मिला हो तो आप झूट न बोलिए कि मैं फ़ारिग़ हो चुका हूं। आंहज़रत (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि "झूट और भूक जमा मत करो" अलबत्ता किसी और सूरत से माज़िरत कर दो।

(12) अगर किसी दूसरे शहर में किसी के यहां जाना हो तो पहले से इत्तिला कर दीजिए। आंहज़रत (स.अ.व.) ने रात को किसी के यहां पहुंचने से सख़्ती से मुमानअत फ़रमाई है। यहां तक कि बिला इत्तिला रात को अपने घर में पहुंचने की इजाज़त भी नहीं है।

(13) जब आप अन्दर दाख़िल हों तो सलाम करें, मुसाफ़हा या मुआनक़ा के लिए आगे बढ़ना साहबे मकान का काम है, अगर वह आगे नहीं बढ़ता या किसी काम में मसरूफ़ है तो आप उसकी मसरूफ़ियत में ख़लल न डालें।

(14) मजलिसे दर्स या मजलिसे वाज़ में दाख़िल हों या मस्जिद में जाऐं जहां लोग नवाफ़िल, तस्बीह, वज़ीफ़े वग़ैरा में मशगूल हों तो आप सलाम न करें, अगर किसी

को मुख़ातब देखें तो बेशक़ आहिस्ता से सलाम कर लीजिए।

(15) अन्दर दाख़िल हो कर सब से बढ़िया जगह ना बैठें, साहबे मकान की नशिस्त पर भी न बैठें? मामूली जगह पर बैठ जाइये, ये काम मालिके मकान का है कि आप को ख़ुद अपनी जगह बिठाए या आप के बैठने के लिए मुनासिब जगह तजवीज़ करे।

(16) अगर आप को खाने की कोई चीज़ पेश की जाए तो किसी के आगे ना बढ़ाइये।

(17) कुरआन पाक में मर्दों, औरतों को हिदायत है कि नज़र नीचे रखें, इस हुक्म पर हर जगह अमल कीजिए किसी के यहां पहुंच कर हर तरफ़ नज़र न दौड़ाइये।

(18) आंहज़रत (स.अ.व.) ने हर मौक़ा पर मतानत व संजीदगी की हिदायत फ़रमाई है। किसी के यहां जाएं तो गुफ़्तगू में नर्मी होनी चाहिए, अंदाज़ में संजीदगी हो, बिला इजाज़त किसी चीज़ को मत छेड़िये, ललचाई निगाहों से ना देखिये।

(19) ज़्यादा देर न बैठिए, बात भी लम्बी न कीजिए। जब काम हो जाए तो फ़ौरन इजाज़त ले लीजिए। हां अगर मालिके मकान इसरार करे तो जितनी देर आपको गुंजाइश हो बैठ जाइए।

(20) बच्चों की तरबियत इस्लामी तरीक़े पर होनी चाहिए ताकि शुरू से ही उन बातों की आदत पड़ जाए।

(21) किसी के पास जाएं तो सलाम से या रूबरू बैठने से ग़रज़ किसी तरह से उसको अपने आने की ख़बर कर दें, और बग़ैर इत्तिला के आड़ में ऐसी जगह मत बैठिए कि उसको तुम्हारे आने की ख़बर न हो। क्योंकि

शायद वह कोई ऐसी बात करना चाहे जिस पर तुम को मुत्तला न करना चाहता हो, बग़ैर उसकी रज़ा के उसके राज़ पर मुत्तला होना जाइज़ नहीं, बिल्क अगर किसी बात के वक़्त ये एहतेमाल हो कि बेख़बरी के गुमान में वह बात हो रही है तो फ़ौरन वहां से जुदा हो जाना चाहिए, या अगर तुम को सोता हुआ समझ कर ऐसी बात करने लगे तो फ़ौरन अपना बेदार होना ज़ाहिर कर दीजिए।

(22) जब किसी के पास मिलने या कुछ कहने जाऐं उसको किसी वजह से फुरसत न हो, मसलन कुरआन करीम की तिलावत कर रहा है, या वज़ीफ़ा पढ़ रहा है, या क़स्दन ख़लवत गाह में कुछ लिख रहा है, या सोने के लिए आमादा है, या क़राईन से और कोई ऐसी हालत मालूम हो जिनसे ग़ालिबन उसकी तरफ़ मुतवज्जेह होने से ख़लल वाक़ेअ़ होगा या उसको गिरानी व परेशानी होगी। ऐसे वक़्त में उससे सलाम कलाम मत कीजिए। बल्कि या तो चले जाइए, और अगर बहुत ही ज़रूरी हो तो मुख़ातब से पहले पूछ लिया जाए कि मैं कुछ कहना चाहता हूं या फुरसत का इंतिज़ार किया जाए।

(23) जब किसी के इंतिज़ार में बैठना हो तो ऐसे मौक़ा पर और इस तौर से न बैठे कि उस शख़्स को ये मालूम हो जाए कि तुम उसका इंतिज़ार कर रहे हो। बल्कि उससे दूर और निगाह से पोशीदा हो कर बैठे।

(24) जो शख़्स खाना खाने या दावत में जा रहा हो, या बुलाया गया हो, उसके साथ उस मक़ाम तक न जाइए, क्योंकि साहबे ख़ाना शर्मा कर खाने की तवाज़ोअ़ करता है और दिल अन्दर से नहीं चाहता।

(25) पुराने शनासा या नए आदमी को सलाम के बाद फ़ौरन अपने नाम के साथ मुतआरफ़ कर दीजिए। क्योंकि बाज़ मरतबा आप बेतकल्लुफ़ हो कर मिलते हैं और मुख़ातब परेशनी में मुब्तला हो जाता है और वह नाम भी मालूम करते हुए शर्माता है। क्योंकि उसने आपको नहीं पहचाना।

(26) जो शख़्स तेज़ी के साथ जा रहा हो, रास्ता में उसको मुसाफ़हा के लिए मत रोकिए। शायद उसका कोई हरज हो, इसी तरह उसको ऐसे वक़्त में खड़ा कर के बात में न लगाइए।

(27) बाज़ अफ़राद मजलिस में पहुंच कर सब से अलग अलग मुसाफ़हा करते हैं, अगरचे सब से तआरुफ़ न हो, इसमें बहुत वक़्त सर्फ़ होता है। फ़रागत तक तमाम मजलिस मशगूल व परेशान होती है। मुनासिब यही है कि जिसके पास मिलने के लिए आए हैं सिर्फ़ उससे ही मुसाफ़हा किया जाए। अलबत्ता अगर दूसरों से भी तआरुफ़ हो तो कोई हरज नहीं।

(28) जब किसी से मिलने जाएं और तुम को खाना खाना मंजूर न हो तो फ़ौरन जाते ही मेज़बान को इत्तिला कर दीजिए।

(29) जिससे ज़्यादा बेतकल्लुफ़ी न हो उससे मुलाक़ात के वक़्त उसके घर के हालात मत मालूम कीजिए।

(30) रात में अगर अपने ही घर में देर से आना हो तो सोने वालों का ख़्याल रखिए। मिश्कात की हदीस से साबित है कि जब आप (स.अ.व.) के यहां मेहमान मुक़ीम होते, इशा के बाद अगर आप (स.अ.व.) देर से तशरीफ़ लाते चूंकि मेहमान के जागने और सोने का एहतेमाल

होता इसलिए आप (स.अ.व.) सलाम तो करते, मगर इतनी आहिस्ता से कि अगर जागते हों तो सुन लें और अगर सोते हों तो आंख न खुल जाए।

शबेबराअत को रसूलुल्लाह (स.अ.व.) बिस्तर पर से उठे, इस ख़्याल से कि हज़रत आइशा (रज़ि.) सो रही होंगी, बचैन न हों, आहिस्ता से जूते मुबारक पहने और आहिस्ता से किवाड़ खोले और आहिस्ता से बाहर क़ब्रस्तान तशरीफ़ ले गए और आहिस्ता से ही किवाड़ बंद किए। किस क़दर रिआयात है कि ऐसी आवाज़ या खटका भी न किया जाए, जिससे सोने वाला अचानक घबरा कर जाग उठे और परेशान हो।

(31) ऐसे दो शख़्सों के दरमियान में जो क़स्दन पास पास बैठे हों उनके बीच में जा कर बैठना बग़ैर इजाज़त के जाइज़ नहीं है।

(32) मजलिसे दर्स या मजलिसे वाज़ वग़ैरा में जहां पर भी जगह मिल जाए बैठ जाइए। लोगों को चीर फाड़ कर आगे न बढ़िए, क्योंकि हज़रत जाबिर (रज़ि.) की रिवायत है कि— हम जब नबी करीम (स.अ.व.) के पास आते तो जो शख़्स जिस जगह पहुंच जाता वहां ही बैठ जाता।

(33) अयादत में मरीज़ के पास ज़्यादा देर न बैठिए कि मरीज़ की गिरानी का सबब न हो जाए, क्योंकि बाज़ औक़ात किसी के बैठने से मरीज़ को करवट बदलने या पांव फैलाने में या बात चीत करने में एक गूना तकल्लुफ़ होता है। अलबत्ता जिसके बैठने से मरीज़ को राहत व सुकून हो वह उससे मुस्तस्ना है।

(34) बीमार के सामने या उसके घर वालों के सामने ऐसी बातें न करिए, जिससे ज़िन्दगी की नाउम्मीदी पाई जाए, नाहक़ दिल टूटेगा, बल्कि सुन्नत तरीक़ा यही है कि तसल्ली की बातें की जाऐं कि इंशाअल्लाह सब दुख व तकलीफ़ जाती रहेगी।

(35) जो सफ़र की तैयारी में मशगूल हो उसके पास बे वक़्त मिलने मत जाइए, या उससे इतनी देर बातें न करिए कि वह तंग हो जाए या उसके किसी काम में हरज वाक़ेअ़ होने लगे। जिससे मुसाफ़िर को मदद मिले या इजाज़त दे दे तो वह उससे मुस्तस्ना है।

(36) किसी के पास बैठना हो तो इस क़दर मिल कर न बैठिए कि उसका दिल घबरा जाए और न इस क़दर फ़ासिले से बैठिए कि बात चीत वग़ैरा करने में तकल्लुफ़ हो। मशगूल आदमी के पास बैठ कर उसको मत तकिएगा कि उससे दिल बटता है और दिल पर अजीब क़िस्म का बोझ मालूम होता है, बल्कि ख़ुद उसकी तरफ़ मुतवज्जेह हो कर भी न बैठिए।

(37) जब क़िसी के घर मेहमान जाऐं तो उससे किसी चीज़ की फ़रमाइश मत कीजिए, क्योंकि बाज़ दफ़ा चीज़ तो होती बेहक़ीक़त, मगर वक़्त की बात है, मौक़ा नहीं कि घर वाला उसको पूरी कर सके, नाहक़ मेज़बान को शरमिंदगी होगी।

(38) जब तुम से कोई किसी काम के लिए कहे तो उसको सुन कर हां या नहीं ज़रूर ज़बान से कुछ कह देना चाहिए कि कहने वाले का दिल एक तरफ़ हो जाए ताकि ऐसा न हो कि कहने वाला तो समझे कि उसने

सुन लिया और तुम ने सुना न हो। या वह समझे कि तुम ये काम कर दोगे और तुम को करना मंजूर न हो, तो नाहक़ दूसरा भरोसा में रहा।

(39) जब तुम से कोई बात करे तो बेतवज्जुही से न सुनो कि बात करने वाले का दिल उससे अफ़्सुर्दा हो जात है, ख़ुसूसन जो तुम्हारी ही मसलिहत के लिए कोई बात कह रहा हो या तुम्हारे सवाल का जवाब देता हो।

(40) जिससे तुम ख़ुद अपनी दुन्यवी या दीनी कोई ज़रूरत पेश करो और वह उसके मुतअल्लिक़ तुम से किसी बात की तहक़ीक़ करे तो गोल मोल मुब्हम जवाब मत दीजिए, साफ़ साफ़ अपनी ग़रज़ व मतलब पेश कर दीजिए, तकल्लुफ़ के किनायात व इशारात का इस्तेमाल मुनासिब नहीं है।

(41) बात हमेशा साफ़ और बेतकल्लुफ़ कह देनी चाहिए। तकल्लुफ़ की तम्हीद वग़ैरा न बांधिए।

(42) बाज़ आदमी थोड़ी बात पुकार कर ज़ोर से कहते हैं और थोड़ी बात बिल्कुल आहिस्ता कि बिल्कुल सुनाई न दे, या नातमाम सुनाई दे, दोनों सूरतों में मुम्किन है कि सामेअ़ को ग़लत फ़ह्मी या तरद्दुद व उलझन हो। बात के हर जुज़्व को बहुत ही साफ़ कह देना चाहिए।

(43) बात को अच्छी तरह तवज्जोह से सुनना चाहिए। और अगर कुछ शुब्हा रहे तो बेतकल्लुफ़ बात करने वाले से फ़ौरन दोबारा तहक़ीक़ कर लेनी चाहिए, बग़ैर समझे महज़ इज्तिहाद से अमल न करे, क्योंकि बाज़ मरतबा ग़लत फ़ह्मी के साथ अमल करने से मुतकल्लिम को अज़ीयत होती है।

(44) अगर किसी की पोशीदा बात करनी हो और वह भी उस जगह मौजूद हो तो आंख से या हाथ से उधर इशारा मत कीजिए कि नाहक़ उसको शुब्हा होगा और ये भी जब है कि उस बात का करना शुरू से भी दुरुस्त हो और अगर दुरुस्त न हो तो ऐसी बात करना गुनाहे अज़ीम है।

(45) अगर किसी मजलिस में कोई ख़ास गुफ़्तगू हो रही हो तो नए आने वाले को चाहिए कि ख़्वाह मख़्वाह सलाम कर के अपनी तरफ़ मुतवज्जेह कर के सिलसिलए गुफ़्तगू में मुज़ाहिम न हो, बल्कि चुपके से अलग नज़र बचा कर बैठ जाए। बातों में तवज्जोह न दे, फिर मौक़ा से सलाम वग़ैरा कर सकता है।

(46) अगर कोई ज़रूरत लेकर किसी के पास जाएं तो मौक़ा पा कर फ़ौरन अपनी बात कह देनी चाहिए इंतिज़ार न कराईए। बाज़ आदमी पूछने पर तो कह देते हैं कि सिर्फ़ मिलने की ग़रज़ से आए हैं, जब वह मेज़बान बेफ़िक्र हो गया और मौक़ा भी न रहा तो अब कहते हैं कि हम को कुछ अर्ज़ करना है, तो इससे बहुत अज़ीयत होती है। इसी तरह जब बात करना हो, सामने बैठ कर बात करनी चाहिए। पुश्त के पीछे से बात करने में उलझन मालूम होती है।

(47) जब किसी शख़्स से कोई ज़रूरत पेश करना हो, जिसको पहले भी ज़िक्र कर चुका हो तो दोबारा पेश करने के वक़्त भी पूरी बातें कह देना चाहिए। क़राइन पर या पहली बात के भरोसा पर ना तमाम बात न कहे। मुम्किन है मुख़ातब को पहली बात याद न रही हो और

ग़लत समझ जाए, या न समझने से परेशान हो।

(48) बाज़ आदमी पीछे बैठ कर खंकारते हैं, ताकि खंकार की आवाज़ सुन कर ये शख़्स हम को देखे और फिर हम से बात करे, इस हरकत से सख़्त अज़ीयत होती है, इससे तो यही बेहतर है कि सामने आ कर बैठ जाए और जो कुछ कहना हो कह डाले और मशगूल आदमी के साथ ये भी जब करे कि सख़्त ज़रूरत हो वरना बेहतर यही है कि उसके फ़ारिग़ होने तक ऐसी जगह बैठ जाए कि उसको आने की इत्तिला भी न हो। वरना इससे भी मेज़बान कभी कभी परेशान हो जाता है।

(49) किसी का ख़त जिसके तुम मकतूब इलैह (तुम्हारा तअ़ल्लुक़) न हो, मत देखिए, न हाज़िराना जैसे बाज़ आदमी लिखते जाते हैं और क़रीब में बैठने वाला नज़र बचा कर कनअंखियों से देखता जाता है और न ग़ाइबाना।

(50) इसी तरह किसी के सामने काग़ज़ात या कुछ और रखा हो, उनको उठा कर मत देखिए।

(51) लोगों की अज़ीयत व तकलीफ़ के अस्बाब का इंसिदाद निहायत ज़रूरी है। शरीअ़त ने हद दरजा इसका ख़ास तौर से एहतेमाम किया है कि किसी शख़्स की कोई हरकत, कोई हालत दूसरे शख़्स के लिए अदना दर्जा में भी किसी क़िस्म की तकलीफ़ व अज़ीयत या सिक़्ल व गिरानी या ज़ीक़ व तंगी या तकद्दुर या इंक़िबाज़ या कराहत व नागवारी या तशवीश व परेशानी या तवह्हुश व ख़ल्जान का सबब व मूजिब न हो जाए और हुज़ूर (स.अ.व.) ने अपने क़ौल और अपने फ़ेल ही से सिर्फ़ इसके एहतेमाम करने पर इक्तिफ़ा नहीं किया, बल्कि बाज़

ख़ुद्दाम की लापरवाही के मौक़ा पर इन आदाब व मुलाक़ात के अमल करने पर भी मजबूर फ़रमाया और उनसे काम ले कर भी बतला दिया है।

शरीअ़त का मक़्सद ये है कि किसी से अदना दर्जा भी कुलफ़त व ईज़ा न पहुंचने पाए, ख़्वाह वह तकलीफ़ खिदमते माली हो या जानी या अदब व ताज़ीम के लिहाज़ से हो।

अल्लाह तआ़ला हम सब को इस पर अमल करने की तौफ़ीक़ इनायत फ़रमाए। आमीन!

❖❖❖

पाकीज़ा मुआशरा की तालीम

तीन औक़ात में इजाज़त लेने का पाबंद बनाना, मर्दों, औरतों, लड़कों और लड़कियों, गुलाम, बांदी सब के लिए आ़म है। हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि.) और अक्सर मुफ़स्सिरीन का यही क़ौल है, क्योंकि औक़ाते मख़्सूसा में हर एक का दाख़िल होना तकलीफ़ देह और नागवारी का बाइस होता है, ख़्वाह वह बच्ची हो या बच्चा, अपना हो या बेगाना। इसके वजूब की इल्लत ये है कि इन तीन औक़ात में आदमी ख़लवत व तन्हाई चाहता है। क्योंकि बाज़ औक़ात आदमी अपनी बीवी के साथ बेतकल्लुफ़ी में होता है, बाज़ मरतबा आज़ाए मस्तूरा खुले हुए भी होते हैं।

अगर लोग इसकी एहतियात कर लें कि इन तीन औक़ाते मज़कूरा में भी आज़ाए मस्तूरा को छुपाने की आदत डालें, और बीवी से इख़्तिलात भी न करें कि किसी के आने का एहतेमाल है, तो इस सूरत में हुक्म वाजिब नहीं होता कि अपने इन औक़ात में बच्चों और ख़ादिमों को इजाज़त लेने का पाबंद करें, न उन पर इस हुक्म का वजूब साबित होगा। अलबत्ता इसका मुस्तहब और मुस्तहसन होना हर हाल में है, मगर आ़म तौर से इस पर अमल करना मतरूक हो गया है। हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि.) ने तीन आयात पर अमल न करने का अपने दौर में अफ़सोस

का इज़्हार फ़रमाया था, लेकिन अगर दौरे हाज़िर पर नज़र डाली जाए तो आप को मालूम होगा कि कितना पुरफ़ितन ज़माना है। हज़रत इब्न अब्बास (रज़ि.) तो ख़ैरुलकुरून में अफ़सोस फ़रमा रहे हैं, जबकि लोगों का मक़्सद उनकी ज़िन्दगी की इब्तिदा और इंतिहा सिर्फ़ तालीमाते इस्लाम पर अमल करना ही था। लेकिन आज शआएरे इस्लाम और उसूले इस्लाम से बाज़ लोग इन्हिराफ़ और बेरुख़ी का बरताव कर रहे हैं। हालांकि इस्लाम ने मुकम्मल दस्तूरे हयात अता किया है, जिसमें पैदा होने से लेकर मौत तक ग़रज़ ज़िन्दगी के तमाम शोबा जात की मुकम्मल तालीम और रहनुमाई मौजूदा है, फिर ज़िन्दगी का वह गोशा जिसमें लोगों से मुतअ़ल्लिक़ शर्म व हया वाबस्ता है, भला उसको कैसे तशनए तकमील छोड़ा जा सकता था, इसी वजह से कुरआन ने लोगों के सोने और जागने के तरीक़ा तक पर बहस की और इस बात की तरफ़ ख़ास तवज्जोह दी कि आराम का वह वक़्त कि जब इंसान अपने आप से भी ग़ाफ़िल और बेख़बर होता है तो ऐसी हालत में बेरोक टोक उसके पास नहीं पहुंचना चाहिए कि जिसकी वजह से दोनों को शरमिंदा होना पड़े। इसलिए शरीअ़त ने मुलाक़ात के औक़ात का तअैयुन तक कर दिया है कि आदमी को किस वक़्त और किस तरह मिलना चाहिए।

चूंकि कुरआन शरीफ़ ने पाकीज़ा मुआशरा की तालीम दी है, ताकि कोई किसी की आज़ादी में ख़लल अंदाज़ न हो, सब आराम व राहत से ज़िन्दगी बसर करें। जो लोग अपने मुआशरा को इस्लामी तहज़ीब का पाबंद नहीं बनाऐंगे

वह ख़ुद भी तकलीफ़ व तकल्लुफ़ में मुब्तला रहेंगे और अपनी ज़रूरत व ख़्वाहिश का काम करने में तंगी व परेशानी उठाऐंगे।

"رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا اِنَّکَ اَنْتَ السَّمِیْعُ الْعَلِیْمُ ط"

ख़ैर अंदेश

मुहम्मद रफ़अत क़ासमी

मुदर्रिस दारुलउलूम, देवबंद

25 रबीउस्सानी 1406 हिजरी

❖❖❖

मआख़िज़े किताब

- तफ़सीरे हक़्क़ानी
- आदाबुलमुआशरत
- तफ़सीर ब्यानुस्सुब्हान
- तफ़सीर ब्यानुलकुरआन
- मआरिफुलकुरआन
- तफ़सीरे इब्ने कसीर
- मआरिफुलकुरआन
- तफ़सीरे मज़हरी
- तफ़सीरे कबीर
- तफ़सीरे जलालैन
- रूहुलमआनी
- अहकामुलकुरआन, जस्सास
- तफ़सीर इब्ने जरीर
- अलअदबुलमुफ़िरद
- अलमुन्जिद
- अलक़ामूस
- सिहाहेसित्ता।

ज़मीमा मसाइले आदाबे मुलाक़ात

फ़ेहरिस्त इज़ाफ़ा शुदा मसाइल

उन्वान सफ़हात

□□□

ज़मीमा मसाइल व आदाबे मुलाक़ात

सलाम और इस्लाम

وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَا ط الخ

इस आयत में अल्लाह तआला ने सलाम और उसके जवाब के आदाब बतलाए हैं।

तहीय्या की तशरीह और उसका तारीख़ी पहलू

تحيّه के लफ़्ज़ी माना हैं किसी को حَيَّاكَ الله कहना यानी अल्लाह तुम को ज़िन्दा रखे। क़ब्ल अज़ इस्लाम अरब की आदत थी कि जब आपस में मिलते तो एक दूसरे को حيّاك الله या اَنْعَمَ اللّٰهُ بِكَ عَيْناً या اَنْعِمْ صَبَاحاً वग़ैरा अलफ़ाज़ से सलाम किया करते थे। इस्लाम ने इस तर्ज़े तहीय्या को बदल कर اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ कहने का तरीक़ा जारी किया, जिसके माना हैं– "तुम हर तकलीफ़ और रंज व मुसीबत से सलामत रहो।"

इब्न अरबी (रह.) ने अहकामुलकुरआन में फ़रमाया कि लफ़्ज़े सलाम अल्लाल तआला के असमाए हुस्ना में से है और "अस्सलामु अलैकुम" के माना ये हैं कि "اَللّٰهُ رَقِيْبٌ عَلَيْكُمْ" यानी अल्लाह तआला तुम्हारा मुहाफ़िज़ है।

इस्लामी सलाम तमाम दूसरी अक़वाम के सलाम से बेहतर है

दुनिया की हर मुहज़्ज़ब क़ौम में इसका रिवाज है कि जब आपस में मुलाक़ात करें तो कोई कलिमा आपस की मुवानसत और इज़हारे मुहब्बत के लिए कहें, लेकिन मुवाज़ना

किया जाए तो मालूम होगा कि इस्लामी सलाम जितना जामेअ़ है कोई दूसरा ऐसा जामेअ़ नहीं, क्योंकि इसमें सिर्फ़ इज़हारे मुहब्बत ही नहीं, बल्कि साथ साथ अदाए हक़्क़े मुहब्बत भी है, कि अल्लाह तआ़ला से ये दुआ करते हैं कि आप को तमाम आफ़ात और आलाम से सलामत रखें, फिर दुआ भी अरब के तर्ज़ पर सिर्फ़ ज़िन्दा रहने की नहीं, बल्कि हयाते तैयबा की दुआ है, यानी तमाम आफ़ात और आलाम से महफ़ूज़ रहने की, इसी के साथ इसका भी इज़हार है कि हम और तुम सब अल्लाह तआ़ला के मुहताज हैं। एक दूसरे को कोई नफ़ा बग़ैर उसके इज़्न के नहीं पहुंचा सकता। इस माना के एतेबार से ये कलिमा एक इबादत भी है और अपने भाई मुसलमान को ख़ुदा तआ़ला की याद दिलाने का ज़रीआ भी।

इसी के साथ अगर ये देखा जाए कि जो शख़्स अल्लाह तआ़ला से ये दुआ मांग रहा है कि हमारे साथी को तमाम आफ़ात और तकालीफ़ से महफ़ूज़ फ़रमा दे, तो उसके ज़िम्न में वह गोया ये वादा भी कर रहा है कि तुम मेरे हाथ और ज़बान से मामून हो, तुम्हारी जान, माल, आबरू का मैं मुहाफ़िज़ हूं।

सलाम क्या है?

इब्न अरबी (रह.) ने अहकामुलकुरआन में इमाम इब्न उयैना (रह.) का ये क़ौल नक़्ल किया है–

"اَتَدْرِىْ مَا السَّلَامُ ؟ يَقُوْلُ اَنْتَ اٰمِنٌ مِّنِّىْ"

"यानी तुम जानते हो कि सलाम क्या चीज़ है? सलाम करने वाला ये कहता है कि तुम मुझ से मामून रहो।"

खुलासा ये है कि इस्लामी तहीय्या एक आलमगीर जामईयत रखता है– (1) इसमें अल्लाह तआ़ला का भी ज़िक्र है। (2) तज़कीर भी। (3) अपने भाई मुसलमान से इज़हारे तअ़ल्लुक़ व मुहब्बत भी। (4) उसके लिए बेहतरीन दुआ भी। (5) और उससे ये मुआ़हदा भी कि मेरे हाथ और ज़बान से आप को कोई तकलीफ़ न पहुंचेगी। जैसा कि हदीसे सहीह में रसूले करीम (स.अ.व.) का ये इरशाद वारिद है–

"اَلْمُسْلِمُ مَنْ سَلِمَ الْمُسْلِمُوْنَ مِنْ لِسَانِهٖ وَيَدِهٖ" (الحديث)

"यानी मुसलमान तो वही है जिसके हाथ और ज़बान से सब मुसलमान महफ़ूज़ रहें, किसी को तकलीफ़ न पहुंचे।"

काश मुसलमान इस कलिमा को आ़म लोगों की रस्म की तरह अदा न करे, बल्कि उकसी हक़ीक़त को समझ कर इख़्तियार करे, तो शायद पूरी क़ौम की इस्लाह के लिए यही काफ़ी हो जाए, यही वजह है कि रसूले करीम (स.अ.व.) ने मुसलमानों के बाहम सलाम को रिवाज देने की बड़ी ताकीद फ़रमाई और इसको अफ़ज़लुलआमाल क़रार दिया और उसके फ़ज़ाइल व बरकात और अज्र व सवाब ब्यान फ़रमाए। सहीह मुस्लिम में हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि.) की एक हदीस है कि रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि–

"तुम जन्नत में उस वक़्त तक दाख़िल नहीं हो सकते जब तक मोमिन न हो, और तुम्हारा ईमान मुकम्मल नहीं हो सकता जब तक आपस में एक दूसरे से मुहब्बत न करो। मैं तुम को ऐसी

चीज़ बताता हूं कि अगर तुम उस पर अमल कर लो तो तुम्हारे दरमियान आपस में मुहब्बत क़ाइम हो जाएगी। वह ये कि आपस में सलाम को आ़म करो, यानी हर मुसलमान के लिए ख़्वाह उससे जान पहचान हो या न हो।"

हज़रत अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि एक शख़्स ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से दरयाफ़्त किया कि इस्लाम के आमाल में सब से अफ़ज़ल क्या है? आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि तुम लोगों को खाना खिला दो और सलाम को आ़म करो, ख़्वाह तुम उसको पहचानते हो या न पहचानते हो। (सहीहैन)

मुस्नद अहमद, तिर्मिज़ी, अबूदाऊद ने हज़रत अबूउमामा (रज़ि.) से नक़्ल किया है कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला के नज़दीक सब से ज़्यादा क़रीब वह शख़्स है जो सलाम करने में इब्तिदा करे।

मुस्नद बज़्ज़ार और मुअजमे कबीर, तिबरानी में हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि.) की हदीस है कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि सलाम अल्लाह तआ़ला के नामों में से है। जिसको अल्लाह तआ़ला ने ज़मीन पर उतारा है। इसलिए तुम आपस में सलाम को आ़म करो। क्योंकि मुसलमान आदमी जब किसी मजलिस में जाता है और उनको सलाम करता है तो उस शख़्स को अल्लाह तआ़ला के नज़दीक फ़ज़ीलत का एक बुलंद मक़ाम हासिल होता है, क्योंकि उसने सब को सलाम, यानी अल्लाह तआ़ला की याद दिलाई, अगर मजलिस वालों ने उसके सलाम का जवाब न दिया तो ऐसे लोग उसको जवाब देंगे जो

उस मजलिस वालों से बेहतर हैं यानी अल्लाह तआला के फ़रिश्ते। और एक हदीस में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का इरशाद है कि बड़ा बख़ील वह आदमी है जो सलाम में बुख़्ल करे। (तिबरानी, मुअजमे कबीर अन अबी हुरैरा रज़ि.)

रसूले करीम (स.अ.व.) के इन इरशादात का सहाबए किराम पर जो असर हुआ उसका अंदाज़ा इस रिवायत से होता है कि हज़रत अब्बदुल्लाह इब्न उमर (रज़ि.) अक्सर बाज़ार में सिर्फ़ इसलिए जाया करते थे कि जो मुसलमान मिले उसको सलाम कर के इबादत का सवाब हासिल करें, कुछ ख़रीदना या फ़रोख़्त करना मक़्सूद न होता था। ये रिवायत मुवत्ता इमाम मालिक में तुफ़ैल इब्न उबैय इब्न कअ़ब (रज़ि.) से नक़्ल की है।

सलाम का जवाब और आप (स.अ.व.) का अमल

कुरआन मजीद की जो आयत ऊपर ज़िक्र की गई है उसमें इरशाद ये है कि जब तुम्हें सलाम किया जाए तो उसका जवाब उससे बेहतर अलफ़ाज़ में दो, या कम अज़ कम वैसे ही अलफ़ाज़ कह दो। इसकी तशरीह रसूले करीम (स.अ.व.) ने अपने अमल से इस तरह फ़रमाई कि एक मरतबा आंहज़रत (स.अ.व.) के पास एक साहब आए और कहा– "अस्सलामु अलैकुम या रसूलुल्लाह" आप (स.अ.व.) ने जवाब में एक कलिमा बढ़ा कर फ़रमाया– "व–अलैकुमुस्सलामु व रह़मतुल्लाह" फिर एक साहब आए और उन्होंने सलाम में ये अलफ़ाज़ कहे– "अस्सलामु अलैकुम या रसूलुल्लाह व रहमतुल्लाह" आप ने जवाब में एक और कलिमा बढ़ा कर फ़रमाया– "व–अ़लैकुमुस्सलामु व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू"। फिर एक साहब आए उन्होंने

अपने सलाम ही में तीनों कलिमात बढ़ा कर कहा– "अस्सलामु अलैकुम या रसूलुल्लाह व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू"। आप (स.अ.व.) ने जवाब में सिर्फ़ एक कलिमा "व–अलैक" इरशाद फ़रमया। उनके दिल में शिकायत पैदा हुई और अर्ज़ किया या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मेरे माँ बाप आप पर कुर्बान, पहले जो हज़रात आए आप ने उनके जवाब में कई कलिमात दुआ के इरशाद फ़रमाए और मैंने उन सब अलफ़ाज़ से सलाम किया तो आप ने "व–अलैक" पर इक्तिफ़ा फ़रमाया। आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि तुम ने हमारे लिए कोई कलिमा छोड़ा ही नहीं कि हम जवाब में इज़ाफ़ा करते, तुम ने सारे कलमात अपने सलाम ही में जमा कर दिए। इसलिए हम ने कुरआनी तालीम के मुताबिक़ तुम्हारे सलाम का जवाब बिलमिस्ल देने पर इक्तिफ़ा कर लिया। इस रिवायत को इब्न जरीर और इब्न अबी हातिम ने मुख़्तलिफ़ असानीद के साथ नक़्ल किया है।

हदीसे मज़कूर से एक बात तो ये मालूम हुई कि सलाम का जवाब उससे अच्छे अलफ़ाज़ में देने का जो हुक्म आयते मज़कूरा में आया है उसकी सूरत ये है कि सलाम करने वाले के अलफ़ाज़ से बढ़ा कर जवाब दिया जाए। मसलन उसने कहा– "अस्सलामु अलैकुम" तो आप जवाब दें– "व–अलैकुमुस्सलामु" और उसने कहा– "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि" तो आप जवाब में कहें– "व–अलैकुमुस्सलामु व रहमुतल्लाहि व बरकातुहू"।

दूसरी बात ये मालूम हुई कि ये कलिमात की ज़्यादती सिर्फ़ तीन कलिमात तक मसनून है। इससे ज़्यादा करना मसनून नहीं और हिकमत इसकी ज़ाहिर है कि सलाम

का मौक़ा मुख़्तसर कलाम करने का मुक़्तज़ी है, उसमें इतनी ज़ियादती मुनासिब नहीं है, जो किसी काम में मुख़िल या सुनने वाले पर भारी हो जाए। इसीलिए जब एक साहब ने अपने इब्तिदाई सलाम ही में तीनों कलिमे जमा कर दिए तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने आगे और ज़्यादती से एहतेराज़ फ़रमाया– इसकी मज़ीद तौज़ीह हज़रत अब्दुल्लाह इब्न अब्बसा (रज़ि.) ने इस तरह फ़रमाई कि मज़कूरा तीनों कमिलों से ज़्यादा करने वाले को ये कह कर रोक दिया कि– "اِنَّ السَّلَامَ قَدِ انْتَهىٰ اِلَى الْبَرَكَةِ" (مظهری عن البغوی) यानी सलाम लफ़्ज़े बरकत पर ख़त्म हो जाता है। इससे ज़्यादा करना मसनून नहीं है।

(व मिस्लुहू अन इब्ने कसीर)

तीसरी बात हदीसे मज़कूर से ये मालूम हुई कि सलाम में तीन कलिमे कहने वाले के जवाब में अगर सिर्फ़ एक कलिमा ही कह दिया जाए तो वह भी अदाए बिलमिस्ल के हुक्म में हुक्मे कुरआनी "اَوْرُدُّوْهَا" की तामील के लिए काफ़ी है। जैसा कि उस हदीस में आंहज़रत (स.अ.व.) ने सिर्फ़ एक कलिमा पर इक्तिफ़ा फ़रमाया है।

(तफ़सीरे मज़हरी)

ख़ुलासा

मज़मूने आयत का ख़ुलासा ये हुआ कि जब किसी मुसलमान को सलाम किया जाए तो उसके ज़िम्मा जवाब देना तो वाजिब है, अगर बग़ैर किसी उज़्रे शरई के जवाब न दिया तो गुनहगार होगा। अलबत्ता जवाब देने में दो बातों का इख़्तियार है। एक ये कि जिन अलफ़ाज़ से सलाम किया गया है उनसे बेहतर अलफ़ाज़ में जवाब

दिया जाए। दूसरे ये कि बिऐनिही उन्ही अलफ़ाज़ से जवाब दे दिया जाए।

इस आयत में सलाम का जवाब देने को तो लाज़िम, वाजिब, सराहतन बतला दिया गया है, लेकिन इब्तिदाअन सलाम करने का क्या दर्जा है, इसका ब्यान सराहतन नहीं है मगर "اِذَاحُيِّيْتُمْ" में उसके हुक्म की तरफ़ भी इशारा मौजूद है। क्योंकि इस लफ़्ज़ को बसेग़ए मजहूल बग़ैर तअ़यीने फ़ाएल ज़िक्र करने में इशारा हो सकता है कि सलाम ऐसी चीज़ है जो आदतन सभी मुसलमान करते हैं।

मुस्नदे अहमद, तिर्मिज़ी, अबूदाऊद में आंहज़रत (स.अ.व.) का इरशाद मन्क़ूल है कि अल्लाह के नज़दीक सब से ज़्यादा मुक़र्रब वह शख़्स है जो सलाम की इब्तिदा करे। और सलाम की ताकीद और फ़ज़ाइल आँहज़रत (स.अ.व.) के इरशादात से अभी आप पढ़ चुके हैं, उनसे इतना ज़रूर मालूम होता है कि इब्तिदाअन सलाम करना भी सुन्नते मुअक्कदा से कम नहीं।

तफ़सीर बह्रे मुहीत में है कि इब्तिदाई सलाम तो अक्सर उलमा के नज़दीक सुन्नते मुअक्कदा है और हज़रत हसन बसरी (रह.) ने फ़रमाया "السلام تطوع والرّد فريضة" यानी इब्तिदाअन सलाम करने में तो इख़्तियार है लेकिन सलाम का जवाब देना फ़र्ज है।

रसूले करीम (स.अ.व.) ने इस हुक्मे क़ुरआनी की मज़ीद तशरीह के तौर पर सलाम और जवाबे सलाम के मतअ़ल्लिक़ और भी कुछ तफ़सीलात ब्यान फ़रमाई हैं। वह भी मुख़्तसर तौर पर सुन लीजिए। सहीहैन की हदीस में है कि जो शख़्स सवारी पर हो उसको चाहिए कि प्यादा चलने वाले

को ख़ुद सलाम करे और जो चल रहा हो वह बैठे हुए को सलाम करे और जो लोग तादाद में क़लील हों वह किसी बड़ी जमाअ़त पर गुज़रें तो उनको चाहिए कि सलाम की इब्तिदा करें।

तिर्मिज़ी की एक हदीस में है कि जब आदमी अपने घर में जाए तो अपने घर वालों को सलाम करना चाहिए कि इससे उसके लिए भी बरकत होगी और उसके घर वालों के लिए भी।

अबूदाऊद की एक हदीस में है कि एक मुसलमान से बार बार मुलाक़ात हो तो हर मरतबा सलाम करना चाहिए और जिस तरह अव्वले मुलाक़ात के वक़्त सलाम करना मसनून है उसी तरह रुख़्सत के वक़्त भी सलाम करना मसनून और सवाब है।

इख़्तितामे मज़मून पर फ़रमाया– "إِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ حَسِيْبًا" यानी अल्लाह तआ़ला हर चीज़ का हिसाब लेने वाले हैं, जिनमें इंसान और इस्लामी हुक़ूक़ मिस्ल सलाम और जवाबे सलाम के सब उमूर दाख़िल हैं, उनका भी अल्लाह तआ़ला हिसाब लेंगे।

(मआ़रिफुलकुरआन जिल्द–2 सफ़्हा–501 ता 506)

सलाम में पहल करने की फ़ज़ीलत

हज़रत अबूउमाम (रज़ि.) कहते हैं कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया– लोगों में से अल्लाह के नज़दीक तर वह शख़्स है जो सलाम करने में पहल करे।

(अहमद, तिर्मिज़ी, अबूदाऊद)

तशरीहः इस फ़ज़ीलत के मुख़ातब वह लोग हैं जो रास्ता में एक दूसरे से मिलें, क्योंकि 'इस सूरत में सलाम

करने के हक़ के सिलसिले में वह बराबर की हैसियत रखेंगे, लिहाज़ा उनमें से जो शख़्स पहले सलाम करेगा वह मज़कूरा फ़ज़ीलत का मुस्तहिक़ होगा। इसके बरख़िलाफ़ अगर ये सूरत हो कि एक शख़्स तो कहीं बैठा हुआ हो, और दूसरा शख़्स उसके पास आए तो सलाम करने का हक़ उस दूसरे शख़्स पर होगा जो आया है। लिहाज़ा अगर वह आने वाला सलाम करने में पहल करे तो वह फ़ज़ीलत का मुख़ातब नहीं होगा। क्योंकि उसने सलाम करने में पहल कर के दरहक़ीक़त उस हक़ को अदा कर दिया है जो उसके ज़िम्मा था। हां अगर सलाम करने में वह शख़्स पहल करे जो बैठा हुआ था तो उस फ़ज़ीलत का वह मुस्तहिक़ होगा।

हज़रत उमर (रज़ि.) के बारे में मन्कूल है कि वह फ़रमाया करते थे कि तीन चीज़ें ऐसी हैं कि जिनको इख़्तियार करने से मुसलमानों के बाहमी तअल्लुक़ात में इस्तेहकाम पैदा होता है और एक मुसलमान अपने दूसरे मुसलमान भाई के लिए इख़्लास व मुहब्बत के जज़्बात को फ़रोग़ देता है। एक तो मुलाक़ात के वक़्त सलाम करने में पहल करना। दूसरे किसी मुसलमान को उसके नाम के ज़रीआ मुख़ातब करना और पुकारना जिसको वह पसंद करता है। तीसरे ये कि जब वह मजलिस में आए तो उसको इज़्ज़त व एहतेराम के साथ जगह देना।

मस्अला: जब कहीं आते जाते दो शख़्स आपस में मिलें और दोनों की हैसियत यकसां नौईयत की हो, जैसे दोनों पैदल हों या दोनों सवारी पर हों तो उनमें से जो शख़्स पहले सलाम करेगा वह गोया ये ज़ाहिर करेगा कि

ख़ुदा ने उसको तकब्बुर व गुरूर से पाक रखा है।

मस्अला: सलाम करना सुन्नत है और सलाम का जवाब देना फ़र्ज़ है, अगर कोई शख़्स मजलिस में आए और वहां सलाम करे तो मजलिस वालों पर उसके सलाम का जवाब देना फ़र्ज़ होगा। और अगर वह शख़्स उसी मजलिस में दोबारा आए और फिर सलाम करे तो अब उसके सलाम का जवाब देना उन पर फ़र्ज़ नहीं होगा बल्कि मुस्तहब होगा।

मस्अला: सलाम और उसका जवाब, दोनों के अलफ़ाज़ बसेग़ए जमा होने चाहिऐं, अगरचे मुख़ातब फ़र्दे वाहिद हो, ताकि फ़रिश्ते जो हर शख़्स के साथ होते हैं, सलाम में मुख़ातब के साथ वह भी शरीक हों।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–359)

मस्अला: जो शख़्स सलाम करते वक़्त किसी नामशरूअ़ अम्र का मुरतकिब हो वह सलाम के जवाब का मुस्तहिक़ न होगा। (मुज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–359)

कौन किस को सलाम करे?

हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि.) कहते हैं कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया– जो शख़्स सवारी पर हो, वह पैदल चलने वाले को सलाम करे, पैदल चलने वाला बैठे हुए को सलाम करे और थोड़े आदमी ज़्यादा तादाद वाले आदमियों को सलाम करें। (बुख़ारी व मुस्लिम)

मस्अला: जो शख़्स सवारी पर हो (हदीस के आख़िर तक) ये हुक्म अस्ल में तवाज़ोअ़ व इन्किसारी की तरफ़ राग़िब करने के लिए है क्योंकि जो शख़्स सवारी पर है उसको गोया अल्लाह तआला ने पैदल चलने वाले पर

बरतरी व फ़ौक़ियत अता फ़रमाई है, लिहाज़ा उसको फ़रोतनी ही इख़्तियार करनी चाहिए। इसी तरह जो लोग कम तादाद में हों और वह ऐसे लोगों से मिलें जो तादाद में उनसे ज़्यादा हों तो उनको भी चाहिए कि तवाज़ोअ़ व इंकिसारी की बिना पर और "अक्सरीयत" के एहतेराम के पेशे नज़र सलाम करने में इब्तिदा करें। इमाम नववी (रह.) फ़रमाते हैं कि अगर कोई शख़्स कुछ लोगों से मिले और ये चाहे कि उन सब को सलाम करने की बजाए उनमें से चंद को सलाम करे तो ये मकरूह है, क्योंकि सलाम का अस्ल मक़सद आपस में मुवानसत व उलफ़त को फ़रोग़ देना है। जबकि बाज़ दूसरे लोगों को सलाम करना गोया बाक़ी लोगों को वह्श्त व अजनबीयत में मुब्तला करना है और ये चीज़ें अक्सर औक़ात तनफ़्फ़ुर व अदावत का सबब भी बन जाती हैं।

मस्अलाः बाज़ार और शारेअ़ आ़म का हुक्म इससे अलग है कि अगर बाज़ार में या शारेअ़ आ़म पर बहुत से लोग आ रहे हों तो वहां बाज़ लोगों को सलाम कर लेना काफ़ी होगा। क्योंकि अगर कोई शख़्स बाज़ार में शारेअ़ आ़म पर मिलने वाले हर शख़्स को सलाम करने लगेगा तो वह उसी काम का हो कर रह जाएगा और अपने उमूर की अंजाम दिही से बाज़ रहेगा।

और हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि.) कहते हैं कि रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया—' छोटा बड़े को, गुज़रने वाला बैठे हुए को और कम तादाद वाले ज़्यादा तादाद वाले को सलाम करें। (बुख़ारी)

तशरीहः उलमा ने ये लिखा है कि मज़कूरा बाला

हुक्म सरे राह मुलाक़ात के वक़्त का है। मसलन एक शख़्स उधर से आ रहा है, दूसरा इधर से जा रहा है और दोनों आपस में मिलें तो इस सूरत के लिए ये हुक्म है कि उन दोनों में जो शख़्स छोटा हो वह बड़े को सलाम करे, लेकिन वारिद होने यानी किसी के पास या मजलिस में जाने की सूरत में सलाम की इब्तिदा वारिद को करनी चाहिए। ख़्वाह वह छोटा हो या बड़ा और ख़्वाह कम तादाद वाले लोग हों या ज़्यादा तादाद वाले लोग।

(मज़ाहिरे हक़ जदीद जिल्द–5 सफ़्हा–339)

सलाम किस वक़्त किया जाए?

हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि.) से रिवायत है कि नबी करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया– तुम में से कोई शख़्स जब अपने मुसलमान भाई से मुलाकात करे तो चाहिए कि पहले उसको सलाम करे और उसके बाद दोनों के दरमियान कोई दरख़्त या दीवार या बड़ा पत्थर हाएल हो और फिर उससे मुलाक़ात हो तो उसको दोबारा सलाम करे।

(अबूदाऊद)

तशरीहः मतलब ये है कि इतने मामूली वक़्फ़ा की जुदाई व मुफ़ारक़त के बाद भी सलाम करना मुस्तहब है। चेज़ाएकि ज़्यादा अरसा के बाद मुलाक़ात हो, गोया ये हदीस सलाम के इस्तेहबाब और हर मौक़ा पर इस अदब को मलहूज़ रखने को मुबालग़ा के तौर पर ब्यान करती है। वाज़ेह रहे कि सलाम की अहमियत के बावजूद बाज़ सूरतें ऐसी हैं जो सलाम करने से मुस्तस्ना (अलग) हैं।

उस शख़्स को सलाम करना मकरूह है जो पेशाब कर रहा है, पाख़ाना (फ़लैश व बाथरूम) में हो या जिमाअ़

में मसरूफ़ हो या इस तरह की कोई और हालत हो तो उस वक़्त उस शख़्स को सलाम करना मकरूह है और जवाब देना उस पर वाजिब नहीं होग। इसी तरह अगर कोई शख़्स सो रहा हो या ऊंघ रहा हो या नमाज़ पढ़ रहा हो या अज़ान दे रहा हो या हम्माम (गुसल ख़ाना) में हो या खाना खा रहा हो और निवाला उसके मुंह में हो और इन सूरतों में उसको अगर कोई सलाम करे तो वह जवाब का मुस्तहिक़ नहीं होगा। नीज़ ख़ुतबा के वक़्त न तो सलाम करना चाहिए और न सलाम का जवाब देना चाहिए। और जो शख़्स कुरआन की तिलावत कर रहा हो, उसको भी सलाम न किया जाए। अगर कोई सलाम करे तो तिलावत करने वाले को चाहिए कि तिलावत रोक कर सलाम का जवाब दे और फिर "اعوذ باللہ" पढ़ कर तिलावत शुरू कर दे।

(मज़हिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–348)

अल्लामा इब्न कसीर (रह.) ने लिखा है कि गै़र मुस्लिम और फ़ासिक़ और बिदअ़ती के सलाम का जवाब वाजिब नहीं है। तफ़सीरे सिराज में लिखा है कि काफ़िर को इब्तिदाअन सलाम करना हराम है, लेकिन बाज़ मशाइख़ का क़ौल है कि इस ज़माने में ज़रूरत का लिहाज़ करते हुए गै़र मुस्लिम को सलाम करना जाइज़ है। मगर औला ये है कि दिल से नीयत न करे, सिर्फ़ हाथ का इशारा करे और अगर ज़बान से भी कहे तो मलाइका की नीयत करे। अगरचे बज़ाहिर हर गै़र मुस्लिम को सलाम करना मालूम हो, मगर बातिन में नीयत और हो (या आदाब अर्ज़ है, या हदकाल्लाहु वग़ैरा के अलफ़ाज़ से सलाम व तअ़ल्लुक़

का इज़हार करे। लेकिन आज कल बाज़ हज़रात ग़ैर मज़ाहिब वालों के अलफ़ाज़ में सलाम करते हैं ये ग़ैर मुनासिब है।)

मस्अलाः नमाज़ पढ़ने वाले, ख़ुत्बा पढ़ने वाले और हज की लब्बैक कहने वाले को सलाम करना मसनून नहीं और न उन पर जवाब देना लाज़िम है।

मस्अलाः कुरआन व हदीस पढ़ने वाला या इल्मी मुज़ाकरात करने वाला सलाम का जवाब न दे।

मस्अलाः मसनून है कि मर्द जब अपने घर में जाए तो बीवी को सलाम करे और बीवी शौहर को सलाम करे और क़राबतदार महरम औरत को सलाम करना मसनून है।

मस्अलाः सवार पैदल को और चलने वाला बैठे हुए को और छोटा बड़े को, छोटी जमाअत बड़ी जमाअत को सलाम करे। जो शख़्स सलाम का जवाब नहीं देता उसकी रूह गंदी हो जाती है।

मस्अलाः जो शख़्स शतरंज या जुवा वग़ैरा खेल रहा हो या गा रहा हो या कबूतर उड़ा रहा हो या ऐसा फ़ेल करता हो तो उसको सलाम न करना चाहिए।

(तफ़सीर ब्यानुस्सुब्हान जिल्द–1 सफ़्हा–491)

मस्अलाः सलाम में पहल करना अगर अकेला शख़्स हो तो सुन्नते ऐनी है और अगर जमाअत हो तो सुन्नते किफ़ाया है, यानी अगर जमाअत में से एक ने सलाम कर दिया या जवाब दे दिया तो सब के ज़िम्मा से साक़ित हो जाएगा। लेकिन सवाब उसको मिलेगा जिसने सलाम किया है। और अगर सब सलाम करेंगे तो सब को सवाब मिलेगा। और जिस शख़्स को एक जमाअत ने सलाम किया हो

उसको एक जवाब सब को देना काफ़ी है। सलाम का जवाब देना कुल जमाअ़त पर वाजिब है लेकिन अगर एक ने भी जवाब दे दिया तो औरों की तरफ़ से ये वजूब साक़ित हो जाएगा।

(तफ़सीर ब्यानुस्सुब्हान जिल्द–1 सफ़हा–491 व मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़हा–347)

मस्अला: अगर घर में कोई फ़र्द न हो तो मुस्तहब ये है कि इस तरह कहे– "السلام علينا وعلى عباد الله الصالحين" ताकि वहां जो फ़रिश्ते हों उनको सलाम पहुंचे। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़हा–348)

मस्अला: सलाम, कलाम से पहले यानी मुलाक़ात के पहले सलाम करना चाहिए और उसके बाद बात चीत करना चाहिए। सलाम करने से पहले बात चीत शुरू कर देना अच्छा नहीं है। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़हा–349)

मस्अला: जो अज़ान व इक़ामत कह रहा है, या दीनी किताबों का दर्स दे रहा है या इंसानी ज़रूरयात इस्तिंजा वग़ैरा में मशग़ूल है उसको इस हालत में सलाम करना भी जाइज़ नहीं और उसके ज़िम्मा जवाब देना भी वाजिब नहीं। (मआ़रिफुलक़ुरआन जिल्द–5 सफ़हा–506)

सलाम का अदना दर्जा

मस्अला: सलाम का अदना दर्जा अस्सलामु अलैकुम कहना है और अगर अस्सलामु अलैकुम या सलामु अलैक कहा जाए तो भी काफ़ी होगा और जवाब में अदना दर्जा व अलैकस्सलामु और व–अलैकुमुस्सलामु है और अगर वाव न लगाया जाए तो भी काफ़ी होगा।

मस्अला: उलमा का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि

अगर जवाब में सिर्फ़ अलैकुम कहा जाए तो जवाब पूरा नहीं होगा। और अगर जवाब में व अलैकुम कहा जाए यानी वाव लगाया जाए तो इस सूरत में दोनों क़ौल हैं।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–345)

मस्अलाः अगर कोई शख़्स अस्सलामु अलै–क कहे तो उसके जवाब में व अलै–कस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू कहा जाए। इसी तरह अगर कोई अस्सलामु अलै–क व रहमतुल्लाहि कहे तो उसके जवाब में व–अलैक स्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू व मग़फ़िरतुहू।

मस्अलाः अगर दो शख़्स मिलें और दोनों एक ही साथ अस्सलामु अलै–क कहें तो दोनों में से हर एक पर जवाब देना वाजिब होगा।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–337)

सलाम करते वक़्त झुकना

हदीस से वाज़ेह है कि सलाम के वक़्त झुकना जैसा कि कुछ लोगों का मामूल है और बाज़ जगहों पर इसका रिवाज भी है ये ख़िलाफ़े सुन्नत है और आंहज़रत (स.अ.व.) ने इसको इस बिना पर पसंद नहीं फ़रमाया कि ये चीज़ रुकूअ़ के हुक्म में है और रुकूअ़ अल्लाह तआ़ला की इबादत है।

मस्अलाः अगर कोई शख़्स किसी के सामने ज़मीन बोसी करे या उसके आगे पीठ को झुकाए तो इसकी वजह से वह काफ़िर नहीं होगा। अलबत्ता गुनहगार होगा क्योंकि ज़मीन बोसी करना या झुकना ताज़ीम की ख़ातिर होता है न कि इबादत की नीयत से। और अगर इबादत की नीयत से इस तरह का फ़ेल किया जाएगा तो वह

यक़ीनन काफ़िर हो जाएगा।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–371)

मुलाक़ात के लिए खड़े होना

आने वाले की ताज़ीम के तौर पर बैठे हुए लोगों को क़याम यानी खड़े हो जाना मकरूह नहीं है और ये कि क़याम बिनफ़्सिही मकरूह नहीं है बल्कि क़याम की तलब व पसंदीदगी मकरूह है, चुनांचे वह क़याम हरगिज़ मकरूह नहीं होगा जो किसी ऐसे शख़्स के लिए किया जाए जो न तो अपने लिए क़याम की तलब रखता है और न उसको पसंद करता हो।

मस्अलाः खड़े होने की मुमानअ़त का तअ़ल्लुक़ उस शख़्स के हक़ में है जो बैठा हुआ हो, और बैठे रहने तक लोग उसके सामने खड़े रहें।

हासिल ये है कि अगर कोई ऐसा शख़्स नज़र आये जो इल्म व फ़ज़्ल और बुज़ुर्गी का हामिल हो तो उसकी ताज़ीम व तौक़ीर के तौर पर खड़े हो जाना जाइज़ है। इसमें कोई मुज़ाएक़ा नहीं। अलबत्ता ऐसे शख़्स के आने पर खड़े होना जो न सिर्फ़ ये कि इस एज़ाज़ का मुस्तहिक़ न हो बल्कि अपने आने पर लोगों के खड़े हो जाने की तलब व ख़्वाहिश भी रखता हो वह मकरूह है। और इसी तरह बेजा ख़ुशामद व चापलोसी के तौर पर खड़े होना भी मकरूह है। नीज़ दुनियादारों के लिए खड़े होना और उनकी ताज़ीम करना भी मकरूह है और इस बारे में सख़्स वईद मन्कूल है।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–380)

मकरूह व ममनूअ़ ये चीज़ है कि अपनी ताज़ीम व

एहतेराम कराने और बड़ाई के इज़हार के लिए अपने सामने लोगों के खड़े रहने को पसंद किया जाए। और अगर ये सूरत न हो तो फिर मकरूह व ममनूअ़ नहीं होगा।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–383)

और वईद का तअल्लुक़ भी उस शख़्स की ज़ात से है जो बतरीक़े तकब्बुर व नख़्वत लोगों को ये हुक्म दे कि वह उसके सामने खड़े रहें या वह लोगों के लिए ज़रूरी क़रार दे कि वह जब भी उसके सामने आयें खड़े रहें। (रफ़अ़त क़ासमी)

अजनबी औरत को सलाम करना?

हज़रत जरीर (रज़ि.) से रिवायत है कि एक मरतबा नबी करीम (स.अ.व.) औरतों के पास से गुज़रे तो आप (स.अ.व.) ने उनको सलाम किया। (अहमद)

तशरीहः ये बात आंहज़रत (स.अ.व.) की ज़ाते गिरामी के साथ मख़सूस थी, क्योंकि किसी फ़ितना व शर में आंहज़रत (स.अ.व.) के मुब्तला होने का कोई ख़ौफ़ व ख़तरा न था। इसलिए आप (स.अ.व.) के लिए औरतों को भी सलाम करना रवा था, लेकिन आप (स.अ.व.) के अलावा किसी दूसरे मुसलमान के लिए ये मकरूह है कि वह अजनबी औरत को सलाम करे। हां अगर कोई औरत इतनी उमर रसीदा हो कि उसकी तरफ़ किसी फ़ितना व ज़रर में मुब्तला होने का कोई ख़ौफ़ न हो और न उसको सलाम करना दूसरों की नज़रों में किसी बदगुमानी का सबब बन सकता हो तो उसको सलाम करना जाइज़ होगा। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–346)

ग़ाइबाना सलाम और उसका जवाब

मस्अला: अगर कोई शख़्स किसी की तरफ़ से सलाम पहुंचाए तो मसनून ये है कि सलाम पहुंचाने वाले पर भी सलाम भेजा जाए और जिसकी तरफ़ से उसने सलाम पहुंचाया है उस पर भी, यानी जब कोई शख़्स किसी की तरफ़ से सलाम पहुंचाए तो जवाब में यूं कहा जाए– "عليک وعلى فلان السلام" या "وعليک وعليه السلام" चुनांचे निसाई की रिवायत में ये अलफ़ाज़ बऔनिही मन्कूल हैं।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–350)

इशारों के ज़रीआ सलाम करना?

यहूदी और ईसाई सलाम करने या सलाम करने का जवाब देने के लिए या दोनों के लिए महज़ इशारों ही पर इक्तिफ़ा कर लेते थे, सलाम का लफ़्ज़ नहीं कहते थे जो हज़रत आदम अलैहिस्सलाम और उनकी ज़ुर्रीयत में से अंबिया व औलिया की सुन्नत और तरीक़ा है, चुनांचे आंहज़रत (स.अ.व.) को मुकाशफ़ा हुआ कि मेरी उम्मत के कुछ लोग बेराहरवी का शिकार हो कर सलाम करने का वह तरीक़ा इख़्तियार करेंगे जो यहूदियों और दूसरी ग़ैर अक़वाम का है। जैसे उंगलियों या हथेलियों के ज़रीआ इशारा करना, हाथ जोड़ लेना, कमर या सर को झुकाना और सिर्फ़ सलाम करने पर इक्तिफ़ा कर लेना वग़ैरा वग़ैरा। लिहाज़ा आप (स.अ.व.) ने पूरी उम्मत को मुख़ातब करते हुए इस बारे में तंबीह ब्यान फ़रमाई और ये वईद ब्यान की कि जो शख़्स सलाम के उन रस्म व रिवाज को अपनाएगा जो इस्लामी शरीअत और हमारी सुन्नत के ख़िलाफ़ हैं तो उसको समझ लेना चाहिए कि उसका शुमार हमारी उम्मत के

लोगों में नहीं होगा। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–347)

ग़ैर मुस्लिम को सलाम करना?

मस्अला: ग़ैर मुस्लिम को अस्सलामु अलैकुम न कहो। क्योंकि सलाम में पहल करना दरहक़ीक़त इस्लामी तहज़ीब का बख़्शा हुआ एक एज़ाज़ है जिसके मुस्तहिक़ वही लोग हो सकते हैं जो इस्लामी तहज़ीब के पैरू हों और मुसलमान हों। इस एज़ाज़ का इस्तेहक़ाक़ उन लोगों को हासिल नहीं हो सकता जो दीन के दुश्मन और ख़ुदा के बाग़ी हैं। इसी तरह उन बाग़ियों और दुश्मनों के साथ सलाम और उस जैसी दूसरी चीज़ों के ज़रीआ उल्फ़त व मुहब्बत के मरासिम को क़ाइम करना भी जाइज़ नहीं है। हां अगर वह लोग सलाम में ख़ुद पहल करें और "السلام علیک" या "السلام علیکم" कहें तो उसके जवाब में सिर्फ़ "ھداک اللہ" कहा जाए। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–340)

अदब के माना हैं वह क़ौल व फ़ेल जिसको अच्छा और क़ाबिले तारीफ़ कहा जाए। या अदब का मतलब ये है कि हर बात को दुरुस्ती और अच्छाई के साथ अच्छे मौक़ा पर कहा जाए और हर काम को एहतियात और दूर अंदेशी के साथ अंजाम दिया जाए।

बाज़ हज़रात ये फ़रमाते हैं कि– "अबद" का मतलब ये है कि नेकी व भलाई की राह को इख़्तियार किया जाए और गुनाह व बुराई के रास्ता से इजतिनाब किया जाए। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–335)

इसलिए अगर ग़ैर मुस्लिमों को सलाम के बजाए "आदाब अर्ज़" कह दिया जाए तो कोई मुज़ाएक़ा नहीं है। (मुहम्मद रफ़अत क़ासमी)

मख़्लूत मजलिस में सलाम करने का तरीक़ा

इमाम नववी (रह.) फ़रमाते हैं कि अगर कोई मुसलमान किसी ऐसी जमाअ़त के पास से गुज़रे या किसी ऐसी मजलिस में पहुंचे जिसमें मुसलमान भी हों और ग़ैर मुस्लिम भी, और मुसलमान ख़्वाह एक ही हो या कई हों तो मसनून ये है कि मुसलमानों या मुसलमान का क़स्द कर के पूरी जमाअ़त को सलाम करे। नीज़ उलमा ने लिखा है कि इस सूरत में चाहे तो अस्सलामु अलैकुम कहे और नीयत ये रखे कि इस सलाम के अस्ल मुख़ातब मुसलमान हैं, और चाहे यूं कहे–

"اَلسَّلَامُ عَلٰی مَنِ اتَّبَعَ الْهُدٰی"

नीज़ उलमा लिखते हैं कि अगर किसी मुश्रिक व ग़ैर मुस्लिम को ख़त लिखा जाए तो मसनून ये है कि मकतूब इलैह को सलाम लिखने के बजाए वही अलफ़ाज़ लिखे जो आंहज़रत (स.अ.व.) ने हिरक़्ल (रोम के बादशाह) को लिखे थे यानी– "سَلَامٌ عَلٰی مَنِ اتَّبَعَ الْهُدٰی"

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–343)

वदाई सलाम और उसका जवाब

हज़रत क़तादा (रज़ि.) कहते हैं कि नबी करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया– जब तुम घर में घुसो तो अपने घर वालों को सलाम करो।

तशरीहः हदीस शरीफ़ के अलफ़ाज़– "فودعوا اهله" जो वदाअ़ से है जिसका मतलब ये है कि घर से बाहर जाते वक़्त अपने अह्ल व अ़याल को सलाम के ज़रीआ वदाअ़ कहो। इसीलिए बाज़ उलमा ने लिखा है कि इस रुख़्सती सलाम का जवाब वाजिब नहीं है, बल्कि मुस्तहब

है, क्योंकि ये सलाम अस्ल में दुआ और वदाअ़ है।

और उसके ये माना भी हो सकते हैं कि अपने अह्ल व अ़याल के पास सलाम को वदीअ़त (अमानत) रखो, तो उसका मतलब ये होगा कि जब तुम ने रुख़्सत होते वक़्त अपने अह्ल व अ़याल को सलाम किया तो गोया कि तुम ने ख़ैर व बरकत को अपने अह्ल व अ़याल के पास अमानत रखा जिसको तुम आख़िर में वापस लोगे। जैसा कि कोई शख़्स अपनी कोई चीज़ किसी के पास अमानत रखता है और फिर उसको वापस ले लेता है।

और ये भी मतलब हो सकता है कि तुम सलाम को अपने घर वालों को वदीअ़त (अमानत व सिपुर्दगी) में दे दो ताकि तुम लौट कर उनके पास आओ तो अपनी वदीअ़त (अमानत) को वापस ले लो, जैसा कि अमानतें वापस ली जाती हैं। ये बात गोया इस अम्र की नेक फ़ाल लेने के मुतरादिफ़ है कि घर से रुख़्सत होने वाला सलामती के साथ लौट कर आएगा और उसको दोबारा सलाम करने का मौक़ा मिलेगा। इंशाअल्लाह!

(मज़हिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–349)

हाजी से सलाम व मुसाफ़्हा करना?

हज़रत इब्ने उमर (रज़ि) रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया– जब तुम हाजी से मुलाक़ात करो तो उसको सलाम करो। उससे मुसाफ़्हा करो और उससे अपने लिए बख़्शिश (की दुआ करने) को कहो, इससे पहले कि वह अपने घर में दाख़िल हो और ये इसलिए है कि उसकी बख़्शिश की जा चुकी है। (अहमद)

तशरीह: जो शख़्स उसके घर (बैतुल्लाह) की ज़ियारत

के लिए जाता है वह अल्लाह का मेहमान हो जाता है। जिस तरह मेज़बान अपने मेहमान की हर जाइज़ ख़्वाहिश का एहतेराम करता है उसी तरह अल्लाह तआ़ला भी अपने मेहमानों की लाज रखता है। और जो वह दुआ़ मांगते हैं क़बूल फ़रमाता है, अगर अपनी मग़फ़िरत व बख़्शिश चाहते हैं तो अल्लाह तआ़ला उन्हें मग़फ़िरत व बख़्शिश की दौलत से नवाज़ता है।

हाजी मुस्तजाबुद्दावात हो जाते हैं, जिस वक़्त कि वह मक्का मुकर्रमा में दाख़िल होते हैं और घर वापस आने के चालीस रोज़ बाद तक ऐसे ही रहते हैं। चुनांचे उस ज़माना में दस्तूर था और अब भी है, जब हुज्जाज अपने घर वापस आते थे तो लोग उनके इस्तिक़बाल के वास्ते जाया करते थे और उनकी ग़रज़ ये होती थी कि चूंकि इस शख़्स की मग़फ़िरत हो चुकी है और ये गुनाहों से पाक हो कर आया है उससे मिल कर मुसाफ़हा करें। पेशतर इसके कि वह दुनिया में मलव्वस हो जाए, ताकि हम को भी उनसे कुछ फ़ैज़ पहुंचे। अगरचे आज कल ये ग़रज़ कम और नाम व नुमूद का जज़्बा ज़्यादा होता है।

चुनांचे इस हदीस में भी हाजी से सलाम व मुसाफ़हा करने के लिए घर में दाख़िल होने से पहले की क़ैद इसलिए लगाई गई है कि न सिर्फ़ ये कि वह उस वक़्त तक दुनिया में मलव्वस और अपने अह्ल व अ़याल में मशग़ूल नहीं होता बल्कि उस वक़्त तक वह राहे ख़ुदा ही में होता है और गुनाहों से पाक व साफ़ होता है। और इस सूरत में हाजी चूंकि मुस्तजाबुद्दावात होता है। इसलिए फ़रमाया गया कि उससे अपने लिए मग़फ़िरत व बख़्शिश

की दुआ कराओ ताकि अल्लाह तआ़ला उसे क़बूल करे और तुम्हें मग़फ़िरत व बख़्शिश से नवाज़े।

उलमा लिखते हैं कि उम्रा करने वाला, जिहाद करने वाला और दीनी तालिबे इल्म भी हाजी के हुक्म में है। यानी जब ये लोग लौट कर अपने घर आयें तो उनसे भी घर में दाख़िल होने से पहले सलाम व मुसाफ़हा किया जाए और दुआ व बख़्शिश व मग़फ़िरत की दरख़्वास्त की जाए, क्योंकि ये लोग भी मग़फ़ूर होते हैं।

(मज़ाहिरे हक़ जिल्द–3 सफ़्हा–279)

मुसाफ़हा की फ़ज़ीलत

हज़रत बराअ इब्न आज़िब (रज़ि.) कहते हैं कि नबी करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया– जब दो मुसलमान मिलते हैं और (आपस में एक दूसरे से) मुसाफ़हा करते हैं तो उन दोनों के जुदा होने से पहले ख़ुदा तआ़ला उनको बख़्श देता है। (अहमद, तिर्मिज़ी, इब्न माजा)

तशरीहः आंहज़रत (स.अ.व.) ने फ़रमाया– जब दो मुसलमान मिलते हैं और उनमें का एक अपने दूसरे साथी को सलाम करता है तो उनमें से वह मुसलमान अल्लाह के नज़दीक ज्यादा पसंदीदा होता है जो कुशादा पेशानी और बशाशत के साथ अपने दूसरे साथी से मिलता है और फिर जब दोनों मुसाफ़हा करते हैं तो अल्लाह तआ़ला उन पर सौ रहमतें नाज़िल करता है और नव्वे रहमतें तो उस पर जिसने पहल की और दस रहमतें उस पर जिससे मुसाफ़हा किया है। (मज़ाहिरे हक़ सफ़्हा–370)

मुसाफ़हा व मुआ़नक़ा के अहकाम

बाहमी मुलाक़ात के वक़्त मुसाफ़हा करना सुन्नत है।

नीज़ दोनों हाथों से मुसाफ़हा करना चाहिए। महज़ एक हाथ से मुसाफ़हा करना ग़ैर मसनून है, किसी ख़ास मौक़ा या किसी ख़ास तक़रीब के वक़्त मुसाफ़हा को ज़रूरी समझना ग़ैर शरई बात है। चुनांचे बाज़ मक़ामात पर जो ये रिवाज है कि कुछ लोग अस्र की नमाज़ या जुमा के बाद एक दूसरे से मुसाफ़हा करते हैं इसकी कोई अस्ल नहीं है। और उलमा (रह.) ने तसरीह की है कि तख़्सीसे वक़्त के सबब इस तरह का मुसाफ़हा मकरूह है और बिदअ़ते मज़मूमा है। हां अगर कोई शख़्स (मेहमान) मस्जिद में ऐसे वक़्त आए कि लोग नमाज़ में मशग़ूल हों या नमाज़ शुरू करने वाले हों और वह शख़्स नमाज़ हो जाने के बाद उन लोगों से मुसाफ़हा करे तो ये मुसाफ़हा बिला शुब्हा मसनून मुसाफ़हा है बशर्तेकि उस ने मुसाफ़हा से पहले सलाम भी किया हो। ताहम ये वाज़ेह रहे कि अगरचे किसी मुतऐयन और मकरूह वक़्त में मुसाफ़हा करना मकरूह है लेकिन अगर कोई शख़्स उस वक़्त मुसाफ़हा के लिए हाथ बढ़ाए तो उसकी तरफ़ से हाथ खींच लेना और इस तरह बेएतेनाई बरतना मुनासिब नहीं होगा, क्योंकि उसकी वजह से मुसाफ़हा के लिए हाथ बढ़ाने वाले शख़्स को दुख पहुंचेगा और किसी मुसलमान को दुख न पहुंचाना आदाब की रिआ़यत से ज़्यादा अहम है।

मस्अला: मुसाफ़हा के लिए हाथ देना सुन्नत है, लेकिन मुसाफ़हा का ये तरीक़ा मलहूज़ रहे कि हथेली को हथेली पर रखे, महज़ उंगलियों के सिरों को पकड़ने पर इक्तिफ़ा न करे। क्योंकि महज़ उंगलियों के सिरों को पकड़ना मुसाफ़हा का ऐसा तरीक़ा है जिसको बिदअ़त कहा गया है।

मस्अला: मुआनक़ा यानी एक दूसरे को सीने से लगाना मशरूअ़ है, ख़ास तौर से उस वक़्त जब कि कोई शख़्स सफ़र से आया हो, लेकिन इसकी इजाज़त उसी सूरत में है जब कि उसकी वजह से किसी बुराई में मुब्तला हो जाने या किसी शक व शुब्हा के पैदा हो जाने का ख़ौफ़ न हो।

मस्अला: जो मुआनक़ा बुरे ख़्याल और जिन्सी जज़्बात के तहत हो वह मकरूह है। और जिस मुआनक़ा का तअल्लुक़, मुहब्बत व इकराम के जज़्बा से हो वह बिला शक व शुब्हा जाइज़ है। (मजाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–368)

मस्अला: तक़बील यानी हाथ या पेशानी वग़ैरा चूमना भी (जबकि फ़ितना व शक व शुब्हा का ख़ौफ़ न हो) जाइज़ है। बल्कि बुज़ुर्गाने दीन और मुत्तबेईने सुन्नत उलमा के हाथ पर बोसा देने को बाज़ हज़रात ने मुस्तहब कहा है, लेकिन मुसाफ़हा के बाद ख़ुद अपना हाथ चूमना कुछ अस्ल नहीं रखता, बल्कि ये जाहिलों का तरीक़ा है और मकरूह है। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–368)

मर्दों का औरतों से मुसाफ़हा करना

मस्अला: जवान मर्दों को जवान औरतों से मुसाफ़हा करना हराम है और उस बूढ़ी औरत से मुसाफ़हा करने में कोई मुज़ाएक़ा नहीं है जिसकी तरफ़ जिन्सी जज़्बात माइल न हो सकते हों।

मस्अला: बूढ़ा मर्द जो जिन्सी जज़्बात की फ़ितना ख़ेजियों से बेख़ौफ़ हो चुका हो उसको जवान औरत से मुसाफ़हा करना जाइज़ है।

मस्अला: औरत की तरह खुश शक्ल मर्द (बेरीश लड़के)

से भी मुसाफ़हा करना जाइज़ नहीं है।

मस्अला: वाज़ेह रहे कि जिसको देखना हराम है उसको छूना भी हराम है बल्कि छूने की हुरमत, देखने की हुरमत से ज़्यादा सख़्त है। (मज़ाहिरे हक़ जिल्द–5 सफ़्हा–367)

मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह.) का फ़तवा

सवाल: ईदैन में मुसाफ़हा व मुआनक़ा जाइज़ है या नहीं?

जवाब: क़ाएदा कुल्लिया है कि इबादात में हुज़ूरे अकरम (स.अ.व.) ने जो हैअत और कैफ़ियत मुऐयन फ़रमा दी है। उसमें तग़ैयुर व तबद्दुल जाइज़ नहीं और मुसाफ़हा चूंकि सुन्नत है इसलिए इबादात में से तो हसबे क़ाएदए मज़कूरा उसमें हैअत व कैफ़ीयते मन्कूला से तजावुज़ जाइज़ न होगा और रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से सिर्फ़ पहली मुलाक़ात के वक़्त बिलइजमाअ या रुख़्सत के वक़्त भी अलल इख़्तिलाफ़ मन्कूल है। बस अब इसके लिए उन दो वक़्तों के सिवा और कोई मौक़ा व महल तजवीज़ करना तग़ैयुरे इबादत है जो ममनूअ़ है। लिहाज़ा मुसाफ़हा बाद ईदैन या बाद नमाज़े पंजगाना मकरूह व बिदअ़त है।

(इमदादुलफ़तावा सफ़्हा–708, बहवाला शामी)

मुसाफ़हा और मुआनक़ा की हक़ीक़त

दीन की जिस क़दर भी ज़रूरी ज़रूरी बातें थीं उन पर हज़राते सहाबा (रज़ि.) और ताबईन (रह.) व तबेअ़ ताबईन (रह.) और उसके बाद अस्लाफ़ (रह.) इस पर अमल करते चले आ रहे हैं। इसलिए कि उनको सवाब हासिल करने और दीन का काम करने और छोटी सी सुन्नत अदा करने का हम से ज़्यादा शौक़ व जज़्बा था

जिस चीज़ को उन्होंने दीन समझा, एहतेमाम के साथ उस पर अमल किया।

और जिन चीजों को कुदरत होने के बावजूद नहीं किया तो मालूम हुआ कि वह दीन में से नहीं हैं या ज़रूरी नहीं हैं।

मुसाफ़हा व गले मिलना (मुआनक़ा) गो अपने तरीक़ा से मसनून हैं। सलाम व मुसाफ़हा और गले मिलना दाख़िले इबादत हैं और इबादत को रसूले अकरम (स.अ.व.) के हुक्म के मुताबिक़ ही अदा किया जाए तो जब ही इबादत शुमार होगी और सवाब के हक़दार होंगे, वरना बिदअ़त हो जाएगी और सवाब के बजाए गुनाह और अज़ाब मिलेगा।

हदीस शरीफ़ में ईदैन और दूसरी नमाज़ों के बाद मुसाफ़हा और गले मिलने का कहीं भी ज़िक्र नहीं मिलता है। और सहाबए किराम (रज़ि.) जिनको सुन्नते नबवी (स.अ.व.) से बेनज़ीर इश्क़ था, उनके यहां या उनके बाद अस्लाफ़े किराम (रह.) के अमल से भी ईद के मौक़ा पर इसका सुबूत नहीं मिलता। शरीअ़ते मुतह्हरा से मुसाफ़हा व मुआ़नक़ा वग़ैरा मुलाक़ात करते वक़्त तो है, न कि नमाज़ों के बाद। शरीअ़त ने जो इबादत का मौक़ा व महल मुक़र्रर कर दिया है उसको उसी के मुताबिक़ अदा किया जाएगा तो सवाब होगा।

शारेह मिशकात अलैहिर्रहमा तहरीर फ़रमाते हैं कि बेशक शरई मुसाफ़हा का वक़्त शुरू मुलाक़ात का वक़्त है, लोग बिला मुसाफ़हा व मुआ़नक़ा के मिलते हैं और आपस में ख़ैर व आफ़ियत मालूम करते हैं और फिर जब नमाज़ से फ़ारिग़ हो जाते हैं तो मुसाफ़हा व मुआ़नक़ा

करते हैं, ये कहां की सुन्नत है?

अलबत्ता अगर किसी शख़्स से ईद के रोज़ उसी वक़्त मुलाक़ात हो रही है तो मुसाफ़हा और गले मिलने में कोई हरज नहीं है।

लेकिन ख़्वास को इस मुसाफ़हा और गले मिलने से भी बचना चाहिए, ताकि अवामुन्नास उसको दीन का जुज़्व या सुन्नत न समझें, मगर ऐसा तौर तरीक़ा इख़्तियार किया जाए जिससे लोगों में ग़म व गुस्सा और नफ़रत व बेज़ारी न पाई जाए।

ऐसे मौक़ा पर मुल्ला अली क़ारी (रह.) की हिदायत पर अमल किया जाए तो मुनासिब रहेगा। वह फ़रमाते हैं कि जब कोई मुसलमान बेमौक़ा मुसाफ़हा के लिए हाथ बढ़ाए तो अपना हाथ खींच कर उसका दिल न दुखाए और बदगुमानी का सबब न बने, बल्कि आहिस्तगी और नर्मी से उसको समझा कर मस्अला की हक़ीक़त से आगाह कर दे, यानी ईदैन की नमाज़ के बाद मुसाफ़हा और गले मिलना सुन्नत नहीं है और न दूसरी नमाज़ों के बाद।

अल्लाह तआला इस पर हम सब को अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए। आमीन!

मुहम्मद रफ़अ़त क़ासमी ग़ुफ़िरलहू
मुदर्रिस दारुलउलूम देवबंद (इंडिया)
यकुम शैवाल 1414 हिजरी
मुताबिक़ 13 मार्च 1994 ई० बरोज़ पीर
(यौमे ईद)

सलाम की अग़लात

मस्अला: बाज़ लोग "अस्सलामु अलैकुम" के बजाए ख़त में "सलाम मसनून" लिख देते हैं। सो अगर ख़त में कोई ये लिखे कि बाद सलाम मसनून अ़र्ज़ है तो चूंकि शरीअ़त में ये सेग़ा सलाम का नहीं बल्कि अस्सलामु अलैकुम है। इसलिए इस सेग़ा (सलाम मसनून) का जवाब देना वाजिब न होगा। अगरचे सलाम मसनून लिखना जाइज़ है। (अलइज़ाफ़ात सफ़्हा–199/7)

फ़ाएदा: इससे साबित हुआ कि बाज़ अकाबिर के ख़ुतूत में जो "बाद सलाम मसनून" लिखा है। वह इसलिए कि उन्होंने मुख़ातब पर जवाब वाजिब करने से एहतियात फ़रमाई है। जैसे छींकने पर अलहमदुलिल्लाह आहिस्ता कहना या आयते सज्दा को खुली हुई आवाज़ में न पढ़ने की तालीम फ़रमाई है, ताकि दूसरों पर वाजिब न हो।

मस्अला: सलाम का सेग़ा हदीस शरीफ़ में है "अस्सलामु अलैकुम" या उसके क़रीब क़रीब अलफ़ाज़ आए हैं– "पस और कोई लफ़्ज़" आदाब, बंदगी, कोरनिश वग़ैरा कहना ये सब बिदअ़ते सैयेआ है। जिससे बचना ज़रूरी है। ख़ैर! अगर कोई सलाम के लफ़्ज़ से बहुत ही बुरा माने तो उसको "हज़रत सलामत" या "तस्लीम" या "तस्लीमात" कहने तक गुंजाइश मालूम होती है।

(फुरूउलईमान सफ़्हा–75)

मस्अला: सलाम के वक़्त जो अक्सर लोगों की आदत हाथ उठाने क़ी है ये आदत मेरे नज़दीक तर्क कर देना ज़रूरी है, क्योंकि सलाम के अदा होने में तो हाथ उठाने को कोई दख़्ल नहीं। बस हाथ उठाना ताज़ीम के लिए है जो कि दुरुस्त नहीं। (मक़ालात सफ़्हा–300)

मस्अला: बाज़ लोग सलाम के जवाब में सिर्फ़ सर हिला देना या हाथ सिर्फ़ उठा देना काफ़ी समझते हैं इसके मुतअ़ल्लिक़ जानना चाहिए कि "कुरआन मजीद में है कि जब तुम को कोई सलाम करे तो उससे अच्छा जवाब दो या वैसा ही लौटा दो।" इससे मालूम हुआ कि सलाम के जवाब में "सिर्फ़" सर हिला देना या हाथ उठा देना काफ़ी नहीं, इस तरह जवाब नहीं होता, बल्कि ज़बान से जवाब देना ज़िम्मा रह जाता है।

मस्अला: बाज़ औरतें सलाम शरीअ़त के क़ाएदा के बिल्कुल ख़िलाफ़ करती हैं। बाज़ तो सलाम को सिर्फ़ "साम" कहती हैं। चार हुरूफ़ भी पूरे उनकी ज़बान से नहीं निकलते, हालांकि औरतों में भी "अस्सलामु अलैकुम" कहने का बल्कि मुसाफ़हा करने का रिवाज होना और इन दोनों बातों को फैलाना चाहिए। दोनों बातें सवाब की हैं।

(बहिश्ती ज़ेवर सफ़्हा–60/10)

मस्अला: और इससे भी ज़्यादा तअ़ज्जुब ये है कि जवाब देने वाली सारे कुंबा का नाम गिनवा देती है कि भाई जीता रहे और बेटा ज़िन्दा रहे और शौहर ख़ुश रहे वग़ैरा, लेकिन एक लफ़्ज़ "व–अलैकुमुस्सलामु" न कहा जाएगा। हालांकि "व–अलैकुमुस्सलामु" कहना सुन्नत है।

(तसहीलुलमवाइज़ जिल्द–1 सफ़्हा–470)

मस्अला: अक्सर जगह औरतों में (पहले तो सलाम का आपस में रिवाज था ही नहीं) अब भी इस क़िस्म का रिवाज है कि बजाए "ज़बान से" सलाम के माथे पर हाथ रख दिया (बस इसी को काफ़ी समझ लिया) उधर से जवाब मिला "जीती रहो" "बच्चे जीते रहें" "ठंडी सुहागन रहो" और जो ज़रा लिखी पढ़ी हुई तो सिर्फ़ लफ़्ज़े सलाम कह दिया, मगर चंद रोज़ से यहां बिहम्दिल्लाह इस क़स्बा (थाना भवन) में औरतों में भी आपस में "अस्सलामु अलैकुम" का रिवाज हो गया है।

मस्अला: सलाम में ये बेएहतियातियां की जाती हैं कि ये नहीं देखा जाता कि ये वक़्त सलाम का है या नहीं। ज़िक्र, कुरआन, ख़ुतबा, अज़ान वग़ैरा सब में आते जाते सलाम करते हैं। मसल मशहूर है– "ओछे ने सीखा सलाम सुब्ह देखे न शाम।" हालांकि इबादत के वक़्त ख़्वाह वह ज़िक्र हो या कुरआन या नमाज़, इन वक़्तों में सलाम करना मना है। दूसरे जो शख़्स गुनाह में मशगूल हो उसको सलाम न करे, क्योंकि गुनहगार की ताज़ीम जाइज़ नहीं और सलाम करना एक क़िस्म की ताज़ीम है इसलिए उसको सलाम न करे।

तीसरे पेशाब, पाख़ाना की हालत में और खाने पीने की हालत में भी सलाम न करना चाहिए।

(मुआशरत के हुकूक़ सफ़्हा–7, 3)

ख़ुलासा ये है कि फ़ुक़हा ने तीन मौक़ों में सलाम करना मना किया है।

(1) जब कोई ताअ़त में मशगूल हो।

(2) इसी तरह जब कोई मअ़सियत (गुनाह) में मशगूल हो।

(3) और तीसरा मौक़ा ये है कि हाजते बशरीया में मशगूल हो। (अलकलामुलहसन सफ़्हा–117)

मस्अला: बाज़ लोग जवान औरतों को सलाम करते या उनके सलाम का जवाब देते हैं। हालांकि फ़ुक़हा ने नामहरम जवान औरत को सलाम करने या उसका सलाम लेने यानी सलाम का जवाब देने से मना किया है।

(इस्लाहुर्रुसूम)

मस्अला: सलाम के लिए बाज़ गजह आदाब व तस्लीमात वग़ैरा कहने का रिवाज है ये ग़लत और ख़िलाफ़े शरीअ़त है।

लतीफ़ा: एक शख़्स ने ऐसे मौक़ा पर इस्लाह की ख़ातिर तंज़े मलीह के तौर पर ये लतीफ़ा किया कि एक मजलिस में जा कर कहा कि मेरा भी सज्दा क़बूल हो, लोगों ने कहा कि ये क्या वाहियात है? कहा कि हुज़ूर हर आने वाला शख़्स मुख़्तलिफ़ अलफ़ाज़ से सलाम कर रहा है। कोई "आदाब क़बूल हो" कहता है, कोई "बदंगी" कोई "कोरनशात" कोई और कुछ, हत्ता कि सब सेगे (अलफ़ाज़) ख़त्म हो गए। मैंने सोचा कि अब मैं क्या कहूं, तो मेरे लिए सज्दा के सिवा कुछ बाक़ी न था। इसलिए मैंने इसको इख़्तियार किया। खुलासा ये कि सलाम में ख़िलाफ़े शरअ़ अलफ़ाज़ इस्तेमाल न करना चाहिए।

(वाज़ुलइरतियाब)

मस्अला: बाज़ ने सलाम के बारे में एक निहायत सख़्त ग़लती की कि एक तालिबे इल्म ने अपने वालिद माजिद

को जा कर सलाम किया तो वह कहने लगे कि बेटा! ये बेतमीज़ी है, आदाब कहा करो। साहबो! याद रखो कि सलाम को बेतमीज़ी कहना कुफ़्र है। क्योंकि सलाम को बेतमीज़ी कहना हुजूर (स.अ.व.) की सुन्नत को बेतमीज़ी कहना है और हुजूर (स.अ.व.) की सुन्नत को बेतमीज़ी कहने वाला काफ़िर है। अगर तौबा न करे तो हुकूमते इस्लामिया को उसका क़त्ल करना वाजिब है।

(तसहीलुलमवाइज़ जिल्द–2 सफ़्हा–329)

मुसाफ़हा की अग़लात

मस्अला: लोग मुसाफ़हा को ज़रूरी समझते हैं, हालांकि वह इतना ज़रूरी नहीं। फुक़हा का क़ौल तो हुज्जत है उन्होंने तसरीह की है कि फ़लां फ़लां मवाक़े पर सलाम न किया जाए, उन्हीं मवाक़ेअ़ में से ये भी है कि जब कोई पानी पी रहा हो या खाना खा रहा हो तो उस वक़्त सलाम न करो। इसी तरह अगर कोई वज़ीफ़ा पढ़ता हो या कुरआन पढ़ता हो तो ऐसी हालत में भी उनका फ़तवा है कि सलाम न करो। इसी तरह और भी मवाक़ेअ़ हैं जहां सलाम मना है हालांकि सलाम फ़ी नफ़्सिही मुसाफ़हा से ज्यादा ज़रूरी है।

हदीस में आया है– "ان من تمام تحياتكم المصافحه" जिसका मतलब ये है कि मुसाफ़हा मुतम्मिमे सलाम है और सलाम के लिए कुछ क़वाइद मुक़र्रर हैं। जैसा कि ऊपर मज़कूर हुआ। तो मुसाफ़हा के लिए जो कि उसका ताबेअ़ है बतरीक़े औला होंगे। मसलन लिखा है कि अज़ान के वक़्त सलाम न करो। खाना खाते वक़्त सलाम न करो और भी मवाक़ेअ़ हैं, जिनका हासिल ये है कि

मशगूली के वक़्त सलाम नहीं करना चाहिए। इससे मालूम हुआ कि मशगूली के वक़्त मुसाफ़हा भी नहीं करना चाहिए।

मस्अला: आज कल लोग ग़ज़ब ही करते हैं। एक मरतबा मैं गर्दन झुकाए वज़ीफ़ा पढ़ता था। एक शख़्स आए और मुसाफ़हा के लिए खड़े रहे, मैंने आंखें बंद कर लीं ताकि वह (मशगूली और अदीमुलफ़ुरसती देख कर) चले जाऐं, मगर वह इस पर भी न गए और पुकार कर कहा कि मसाफ़हा! मैंने भी कह दिया वज़ीफ़ा! और बाज़ लोग कंधा पकड़ पकड़ कर खींचते हैं कि मुसाफ़हा कर लीजिए। मुसाफ़हा क्या हुआ बलाए जान हो गया।

(हसनुलअ़ज़ीज़ जिल्द–4 सफ़्हा–430)

मस्अला: बहुत से उलमा तो वदाई मुसाफ़हा को बिदअ़त कहते हैं, मगर ख़ैर हमारे उलमा जाइज़ कहते हैं, चूंकि वदाअ़ के वक़्त सलाम तो नुसूस से साबित है और मुसाफ़हा मुतम्मिमे सलाम है तो मुसाफ़हा भी दुरुस्त हुआ।

(हसनुलअजीज़ जिल्द–4 सफ़्हा–425)

मस्अला: मुसाफ़हा की तरकीब में मशहूर है कि अंगूठों को दबावे, ये बेअस्ल है और ये हदीस कि अंगूठों में रगे महुब्बत है मौजूअ़ (गढ़ी) है।

(हसनुलअज़ीज़ जिल्द–4 सफ़्हा–236)

मस्अला: बाज़ लोग मुसाफ़हा में हाथ पकड़े रहते हैं छोड़ते ही नहीं। इससे उल्झन होती है, किसी के हाथ को ख़्वाह मख़्वाह महबूस कर लेना बुरा है।

मस्अला: इसी तरह ऐसे वक़्त मुसाफ़हा करना भी तकलीफ़ देना है जब हाथ ख़ाली न हों जैसे एक हाथ में जूता है, दूसरे में छतरी है।

मस्अला: इसी तरह जो आदमी काम में मशगूल हो उससे मुसाफ़हा न करना चाहिए, इससे तकलीफ़ होती है और हरज भी होता है।

मस्अला: इसी तरह जो शख़्स तेज़ी से चला जा रहा है उसको मुसाफ़हा के लिए रोकना, ये भी नहीं चाहिए।

मस्अला: अक्सर लोगों की आदत है कि बाद वाज़ के वाज़ कहने वाले से ज़रूर मुसाफ़हा करते हैं (हालांकि वाज़ से पहले भी वाइज़ को देख चुके थे, लेकिन बावजूद मौक़ा और वक़्त मिलने के उस वक़्त सलाम व मुसाफ़हा नहीं किया तो वाज़ के बाद करना गोया वाज़ की ख़ुसूसियत क़रार दी, हालांकि शरीअ़त में मुसाफ़हा के लिए वाज़ की तअ़यीन और ख़ुसूसियत साबित नहीं। सो इसलिए अव्वल तो ये बिदअ़त है और फिर तकलीफ़ भी है।

(तसहीलुलमवाइज़ जिल्द–1 सफ़्हा–585)

मस्अला: बाज़ लोग मुसाफ़हा कर के अपने हाथ को चूमते हैं। इसकी कोई अस्ल नहीं है। जिहालत का नतीजा है और मकरूह है। (फ़तावा रहीमिया जिल्द–2 सफ़्हा–302, बहवाला शामी जिल्द–5 सफ़्हा–337)

मस्अला: बाज़ लोग सलामु अलैक करते वक़्त माथे पर हाथ रख लेते हैं, या झुक जाते हैं और बाज़ मुसाफ़हा कर के सीना पर हाथ रखते हैं, ये सब ख़िलाफ़े शरअ़ और बेअस्ल है। (अग़लातुलअ़वाम सफ़्हा–246)

मस्अला: मुसाफ़हा मुसलमानों की बाहम मुलाक़ात के वक़्त बाद सलाम के मसनून और मशरूअ़ है और चूंकि मुसाफ़हा तक्मिलए सलाम है तो सलाम के बाद होना चाहिए।

(फ़तावा रहीमिया जिल्द–2 सफ़्हा–321, बहवाला तिर्मिज़ी शरीफ़ जिल्द–2 सफ़्हा–97)

मस्अलाः हदीस शरीफ़ में है कि एक सहाबी (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मेरा हाथ आंहज़रत (स.अ.व.) के दोनों मुबारक हाथों में था। इससे साबित होता है कि दोनों हाथों से मुसाफ़हा मसनून है। बिदअ़त नहीं है।

(फ़तावा रहीमिया जिल्द–2 सफ़्हा–309)

मस्अलाः एक दूसरे को सलाम करते वक़्त "अस्सलामु अलैकुम" के लफ़्ज़ के साथ हाथ न उठाए। अगर सामेअ़ (सलाम का सुनने वाला) दूर हो या ऊँचा सुनता हो तो उसको सलाम की आवाज़ पहुंचाए और सुनने में शक हो तो सलाम के लफ़्ज़ के साथ ही हाथ से इशारा करे।

(फ़तावा रहीमिया जिल्द–2 सफ़्हा–395)

मस्अलाः मुसाफ़हा दो हाथ से मसनून है और ग़ैर मुक़ल्लिदीन जिस हदीस को पेश करते हैं उससे मालूम होता है कि आंहज़रत (स.अ.व.) ने दो हाथ से मुसाफ़हा फ़रमाया तब ही तो सहाबा (रज़ि.) का हाथ हुज़ूर अकरम (स.अ.व.) के दोनों मुबारक हाथों के दरमियान हो गया और सहाबी (रज़ि.) ने एक हाथ से मुसाफ़हा किया हो, ये हदीस इस बारे में क़तई नहीं है। इसलिए कि जब दोनों तरफ़ से दोनों हाथों से मुसाफ़हा होगा तो लामुहाला एक हाथ दो हाथों के दरमियान होगा और यहां सहाबी तहदीस बिन्नेमत के तौर पर अपनी सआ़दत मंदी ब्यान फ़रमा रहे हैं कि मेरा एक हाथ हुज़ूरे अकरम (स.अ.व.) के दोनों मुबारक हाथों के दरमियान था। ये बतलाना मक़्सूद नहीं है कि मैंने एक हाथ से मुसाफ़हा किया और सहाबा (रज़ि.)

से ये तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता कि हुजूर (स.अ.व.) तो मुसाफ़हा के लिए दोनों हाथ बढ़ायें और सहाबी एक हाथ से मुसाफ़हा करें (ऐसी बेअदबी व बेतहज़ीबी तो ग़ैर मुक़ल्लिदीन ही कर सकते हैं) और इसकी दलील ये है कि इमाम बुख़ारी (रह.) ने इसी तरह का एक असर हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि.) का नक़्ल फ़रमाया है और उसके बाद उसी असर से मुसाफ़हा के दो हाथ से होने पर इस्तिदलाल फ़रमाया है और साथ साथ हज़रत हम्माद (रह.) का अमल भी पेश किया है कि उन्होंने मुहद्दिसे कबीर अमीरुलमोमिनीन फ़िलहदीस हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मुबारक (रह.) से दो हाथ से मुसाफ़हा फ़रमाया। अगर एक ही हाथ से मुसाफ़हा मसनून होता तो ये हज़राते मुहद्दसीन ज़रूर उस पर नकीर फ़रमाते।

मुलाहज़ा हो इमाम बुख़ारी (रह.) फ़रमाते हैं–

"باب المصافحة. قال ابن مسعود رضى الله عنه عَلَّمَنى
رسول الله صلى الله عليه وسلم التشهد وكفّى بين كَفَّيْهِ"

हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मुझे हुजूर (स.अ.व.) ने तशह्हुद की तालीम फ़रमाई इस हालत में कि मेरा हाथ हुजूर (स.अ.व.) के दोनों मुबारक हाथों के दरमियान था (ख़्याल रहे कि ये तालीम का मौक़ा है जिस तरह बैअत के वक़्त होता है) इसके बाद इमाम बुख़ारी (रह.) ने बाब बांधा है "باب الاخذ باليدين" (दो हाथ से मुसाफ़हा करना) और उसके सुबूत में इब्ने मसऊद (रज़ि.) का यही असर और हज़रत हम्माद (रह.) का अमल पेश किया है। फ़रमाते हैं–

"باب الاخذ باليدين وصافح حماد بن زيد ابن المبارك

بیدیہ۔ حدثنا ابو نعیم قال حدثنا سیف بن سلیمان قال
سمعتُ مجاھدًا یقول حدثنی عبداللّٰہ ابن مخبرۃ ابو معمر
قال سمعتُ ابنَ مسعود یقول علَّمنی النبی صلی اللّٰہ علیہ
وسلم وکفی بین کفیہ التشھد کما یُعِلِّمُنی السورۃ۔

(بخاری شریف جلد-۲ صفحہ-۹۲۶)

इमाम बुख़ारी (रह.) के इस तर्ज़ से बैयन तौर पर साबित हुआ कि मुसाफ़हा दोनों हाथों से हो। शामी में है—

"والسنۃ ان تکون بکلتا یدیہ"

(درمختار والشامی جلد-۵ صفحہ-۳۳۶)

मजालिसुल अबरार में है— "والسنۃ ان تکون بکلتا الیدین" मुसाफ़हा का मसनून तरीक़ा ये है कि दोनों हाथों से हो।

(मजालिसुल अबरार मजलिस—50 सफ़्हा—298)

अबुलहसनात अल्लामा अब्दुलहई लख़नवी (रह.) तहरीर फ़रमाते हैं— यानी तमाम फ़ुक़हा दो हाथ से मुसाफ़हा करने को मसननू कहते हैं।

मजालिसुल अबरार में है— "والسنۃ ان تکون بکلتا الیدین" मुसाफ़हा का मसनून तरीक़ा ये है कि दोनों हाथों से हो, इन्तहा। दुर्रेमुख़्तार और जामिउर्रुमूज़ में भी ऐसा ही है। हज़रत अबूउमामा से रिवायत है— "قال قال رسول اللّٰہ صلی اللّٰہ علیہ وسلم اذاتصافح المسلمان لم تفرق اکفھماحتی یغفر لھما" यानी जब दो मुसलमान मुसाफ़हा करते हैं तो उनके हाथों के अलाहिदा होने से पहले उनके गुनाहों की मग़फ़िरत कर दी जाती है। इन्तहा! ये हदीस इस पर दलालत करती है कि मुसाफ़हा दो हाथ से होना चाहिए। इसलिए कि अगर एक हाथ से मुसाफ़हा होता तो हदीस

में लफ़्ज़ अकुफ़्फ़ुहुमा ("اَكُفّ، كفّ" की जमा है जिसके माना हैं "हाथों" की जगह "कफ़्फ़ाहुमा") होता और उसकी दलील सहीह बुख़ारी की वह तालीक़ है जो "बाबुलअख़्ज़ बिलयदैन" में है। वह "صافح حماد بن زيد بن المبارك" हम्माद इब्न ज़ैद ने इब्न मुबारक से दोनों हाथों से मुसाफ़हा किया। इन्तहा।

इससे मालूम होता है कि ताबईन के दौर में भी यही तरीक़ा मुरौवज था और एक हाथ से मुसाफ़हा का ज़िक्र जो बुख़ारी में है कि हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि.) फ़रमाते हैं। मुझ को नबी (स.अ.व.) ने सूरते कुरआन की तालीम की तरह तशह्हुद यानी अत्तहीयातु लिल्लाहि की तालीम दी, इस हाल में कि मेरा हाथ आप (स.अ.व.) के दोनों मुबारक हाथों के दरमियान था। इस हदीस से मालूम होता है कि ये मज़कूरा मुसाफ़हा मुलाक़ात के वक़्त होने वाला मसनून मुसाफ़हा न था, बल्कि ये तालीम के लिए था, क्योंकि अकाबिर किसी ख़ास चीज़ की तालीम के एहतेमाम के लिए अपने छोटों का एक या दोनों हाथ पकड़ कर तालीम दिया करते हैं। और अगर इस मुसाफ़हा को मुलाक़ात का तस्लीम कर लिया जाए तो इसका सुबूत आंहज़रत (स.अ.व.) के दोनों मुबारक हाथों से हो रहा है और इब्ने मसऊद (रज़ि.) की जानिब से फ़क़त एक हाथ का होना यक़ीनी और क़तई नहीं है, बल्कि दोनों हाथों से होने का इम्कान है, क्योंकि लफ़्ज़ "कफ़" वाहिद के लिए नहीं बल्कि जिन्स के माना में है और इसी तरह लफ़्ज़ "यद" का इस्तेमाल मुहावराते अरब, आयाते कुरआनिया व अहादीस नबवी (स.अ.व.) में बअ़ना जिन्स साबित है, तो

इस सूरत में लफ़्ज़े "यद" एक और दो हाथ को मुतज़म्मिन और शामिल होगा और अक्सर मक़ामात में "दो यद" के मौक़ा पर लफ़्ज़ "यद" आया है। इस एतेबार से जिस हदीस में "اخذ باليد" वारिद है उसकी मुराद एक हाथ से मुसाफ़हा करना नहीं, बल्कि वहां दोनों सूरतों का एहतेमाल है कि एक हाथ से हो या दोनों हाथ से, अलबत्ता अगर किसी जगह हदीसे सहीहा और सरीहा से ये बात मालूम हो कि एक हाथ से मुसाफ़हा मसनून है तो फुक़हा के अक़वाल को छोड़ना पड़ेगा और इस तसरीहे सरीह के बग़ैर फुक़हा के अक़वाल पर अमल करना चाहिए। वल्लाहुआलमु।

(मजमूआ फ़तावा मौलाना अब्दुल हई उर्दू मुबौवब सफ़्हा–117 मतबूआ पाकिस्तान)

इस हदीस के मुतअ़ल्लिक़ मुहद्दिसे जलील हज़रत मौलाना ख़लील अहमद मुहाजिर मदनी (रह.) का एक वाक़िआ "तज़किरतुलख़लील" में है–

एक बार आप टोंक तशरीफ़ ले गए और बंदा हमराह था। चंद अह्ले हदीस मिलने आए और एक हाथ से मुसाफ़हा किया। हज़रत (रह.) ने हसबे आदत दोनों हाथ बढ़ाए और मुस्कुरा कर फ़रमाया कि मुसाफ़हा इस तरह होना चाहिए। वह बोले हदीस में है। सहाबी (रज़ि.) कहते हैं– "وكان يدى فى يديه صلى الله عليه وسلم" मेरा हाथ हुजूर (स.अ.व.) के दोनों हाथों में था। आपने बेसाख़्ता फ़रमाया फिर मुत्तबेअ़ सुन्नते नबवी (स.अ.व.) हम हुए या तुम?

(तज़किरतुलख़लील सफ़्हा–204)

लिहाज़ा मुसाफ़हा दो हाथ से ही मसनून है, न कि

एक हाथ से (फ़तावा रहीमिया जिल्द–6)

हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह.) ने फ़रमाया कि बाज़ हज़रात सुलह कराना इसको समझते हैं कि जहां दो आदमियों में झगड़ा हुआ, फ़ौरन दोनों का मुसाफ़हा करा दिया, ख़्वाह फ़रीक़ैन के दिलों में कुछ भी भरा हुआ हो। मैं तो कहता हूं कि पहले मआमला की इस्लाह करो फिर मुसाफ़हा करो वरना बग़ैर इस्लाहे मआमला के मुसाफ़हा बेकार है। इससे फ़रीक़ैन के दिल का गुबार नहीं निकलता। तो मुसाफ़हा के बाद फिर मकाफ़हा यानी मुक़ातला (लड़ाई झगड़ा) शुरू हो जाता है।

(कमालाते अशरफ़ीया जिल्द–1 सफ़्हा–129)

❖❖❖

ग़ैर मुस्लिमों के सलाम का जवाब

एक नुक्तए नज़र

हमारा हिन्दुस्तानी मुआशरा एक कसीर मज़हबी मुआशरा है, जिसमें हमें एक ग़ैर मुस्लिम अक्सरीयत से वास्ता है। हमारी आबादी की एक बड़ी तादाद का उठना बैठना, रहना सहना इन्ही के दरमियान है। आबादयाती तक़्सीम न होने की वजह से हमारी अक्सरीयत का पड़ोसी भी ग़ैर मुस्लिम है, उनसे हमारे तिजारती तअल्लुक़ात भी हैं और तालीमी रवाबित भी, ग़रज़ हर वक़्त उनका सामना और उनका साथ है।

ये सूरतेहाल जिसकी जानिब सुतूरे बाला में इशारा किया गया, हमारे लिए फ़िक़्ही सवालात की एक तवील तर फ़ेहरिस्त का बाइस होती है। फिर ये सवालात अपने साथ बड़ी नज़ाकतें लिए हुए होते हैं, जिनका ख़्याल रखना अज़ हद ज़रूरी होता है। ज़रा सी बेएहतियाती दावते इस्लामी को वह नुक़्सान पहुंचाती है कि जिसकी तलाफ़ी बाज़ औक़ात नामुमकिन हो जाती है।

ये अलमीया है, वाक़ई अलमीया कि हम बाज़ औक़ात इन सवालात के जवाब में वह रवैया इख़्तियार कर लेते हैं जो शायद ख़िलाफ़ते बनुउमैया के इब्तिदाई अहद में तो हमें ज़ेब दे सकता था, अब बहरहाल नहीं देता।

इस "फ़ेहरिस्ते सवालात" के जवाब में हम वह रवैया नहीं अपना सकते जो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने मदीना की मम्लकते इस्लामी के क़ाइम और मुस्तहकम हो जाने के बाद अपनाया था। बल्कि हमारे लिए इन हालात में उसूल आप (स.अ.व.) का रवैया है, जो आपने अहदे मक्की में इख़्तियार किया, या फिर वह रवैया जो अहदे मदनी के आग़ाज़ में उस वक़्त आप ने अपनाया, जब मदीना पर मुकम्मल बालादस्ती आप को हासिल नहीं हुई थी और आपकी ख़्वाहिश थी कि उस वक़्त ग़ैर मुस्लिमों के दिलों पर हुस्ने अख़लाक़ (तालीफ़े क़ल्ब) से अपनी हुकूमत क़ाइम कर दी जाए। उस वक़्त यहूदे मदीना के साथ आप ने क्या सुलूक किया, इसको समझने के लिए शायद ये मिसाल काफ़ी हो कि आपने दस्तूरे मदीना (सहीफ़ए मदीना) में बाज़ क़बाइले यहूद को मुसलमानों के साथ एक "उम्मत" क़रार दिया, दस्तूरे मज़कूर में एक दफ़ा है– "وان يهود بنى عوف أمة مع المؤمنين" यहूदे बनी औफ़ मोमिनीन के साथ एक उम्मत हैं। फिर आगे चल कर यही बात बाज़ दीगर क़बाइले यहूद के सिलसिले में भी कही गई है।

जिस "तवील तर फ़ेहरिस्ते सवालात" का ऊपर ज़िक्र किया गया उसमें एक, बल्कि उस फ़ेहरिस्त के अहम तरीन सवालात में से एक सवाल ये है कि क्या ग़ैर मुस्लिमों के सलाम का हम जवाब दे सकते हैं? अगर हां! तो फिर जवाब में क्या कहा जाए? ये सवाल लोगों के ज़ेहन में बकसरत आता है, बिलख़ुसूस उन मुसलमानों के ज़ेहन में जो ऐसे ईदारों, दफ़्तरों और तिजारती मराकिज़ में अपने दिन का अक्सर वक़्त गुज़ारते हैं, जहां हर वक़्त ग़ैर

मुस्लिमों की भी एक तादाद होती है। एक अजीब सूरतेहाल उस वक़्त पेश आती है, जब एक ग़ैर मुस्लिम मुसलान से मुलाक़ात के वक़्त ज़ोरदार लहजे में "अस्सलामु अलैकुम" कहता हुआ मुसाफ़हा के लिए हाथ बढ़ा देता है, ये मुसलमान सकता में रह जाता है कि आख़िर क्या करे? जवाब दे तो क्या? क्या वह जवाब जो आम मुसलमानों को देता हैं या कुछ और?

हमारे यहां इस सवाल के जवाब में आम तौर पर ये राय पाई जाती है कि सिर्फ़ "व–अलैकुम" पर इक्तिफ़ा कर लिया जाए। दलील में ये हदीसे नबवी नक़्ल की जाती है– "اذا سلم عليكم اهل الكتاب فقولوا وعليكم" (1) जब अह्ले किताब तुम्हें सलाम कर दें तो जवाब में "वअलैकुम" कहो।

इस हदीस की सेहत से कोई इन्कार नहीं हो सकता लेकिन राक़िमे सुतूर की राय में ये हुक्म बाज़ मख़्सूस हालात से तअ़ल्लुक़ रखता है। दरअस्ल इसकी इल्लत यहूदे मदीना की एक "हरकत" है। जैसा कि इस हदीस की बाज़ दीगर रिवायात से पता चलता है कि यहूदे मदीना मनव्वरा मुसलमानों को सलाम करते वक़्त "अस्सहलामु अलैकुम" (तुम पर सलामती हो) की जगह "अस्सामु अलैकुम" (तुम्हें मौत आए) कहा करते थे और ये कुछ इस अंदाज़ से कहते थे, कि सुनने वाला "अस्सलामु" ही समझता था। इसलिए रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने ये हुक्म दिया कि यहूदियों के सलाम के जवाब में सिर्फ "व–अलैकुम" कहा जाए। (3) ताकि अगर वह हमारे लिए मौत व हलाकत की दुआ करें तो ख़ुद भी उसके मुस्तहिक़ ठहरें, और अगर सलामती हमारे लिए चाहें तो अपने लिए भी हम से

सलामती की दुआ लेते जाऐं।

अब ज़रा इंसाफ़ की निगाह से देखिए कि ये हुक्म जो यहूदे मदीना की मज़कूरा "शरारत" की वजह से वजूद में आया, क्या इसका मुस्तहिक़ है कि उसे हर हाल में अपनायें और अपने लिए वाजिबुत्तामील समझें?

ख़ुद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से ग़ैर मुस्लिमों के जवाब में मुकम्मल जवाब मन्कूल है। हज़रत अबूज़र ग़िफ़ारी (रज़ि.) अभी ईमान नहीं लाए थे, बल्कि इस्लाम के सिलसिले में तहक़ीक़ात करने के लिए मक्का आए थे। पहली ही मुलाक़ात के वक़्त जब आपकी ख़िदमत में सलाम किया तो आप (स.अ.व.) ने "अलैकुम" पर इक्तिफ़ा न कर के जवाब "व रहमतुल्लाहि" के लाहिक़ा के साथ अता फ़रमाया और निहायत हैरत का मक़ाम है कि ये पहला मौक़ा था जब आप (स.अ.व.) ने इस्लामी जवाब किसी को दिया था। हज़रत अबूज़र फ़रमाते हैं– "فكنت اول من حياه بتحية الاسلام" (4) और इस सबसे बढ़ कर ये कि आप "अस्सलामु अलैकुम" (तुम पर सलामती हो) के जवाब में "व–अलैकुमुस्सलामु" तुम पर सलामती हो कहें या "व–अलैकुम" (तुम पर भी), मानवी एतेबार से कुछ फ़र्क़ नहीं होता, दोनों सूरतों में आप उसके लिए सलामती की दुआ करते हैं। अब क्या बात है, सिर्फ़ "व–अलैकुम" पर रुक कर हम ग़ैर मुस्लिमों को शुकूक व शुब्हात की वादी में जाने का मौक़ा देते हैं। ये जो शुकूक व शुब्हात की बात कही गई बेबुनियाद नहीं कही गई। आज कल हमारे करम फ़रमाओं ने जो परोपगंडा का बाज़ार गर्म कर रखा है उसमें वह अपने ग़ैर मुस्लिम हम मज़हबों से ये कहते हैं कि ये मुसलमान जब अपने

किसी मज़हबी भाई का जवाब देते हैं तो "व-अलैकुमुस्सलामु" कहते हैं, लेकिन अगर तुम उनको सलाम करो तो बस आधा जवाब देते हैं और वजह ये है कि उनका दीन उन्हें तुम्हारे साथ हुस्ने सुलूक करने से रोकता है। ज़रा सोचिए कि क्या ग़लत तस्वीर है जो हमारी और हमारे दीन की बनाई जा रही है और शायद हमारे एक बेदलील व बेबुनियाद अमल की वजह से।

और जो दलाइल ज़िक्र किए गए उनकी रौशनी में इस राक़िमे सुतूर की राय ये है कि ग़ैर मुस्लिमों के जवाब में "व-अलैकुमुस्सलामु" कहने में कोई हरज नहीं? जैसा कि मज़मून के उनवान से ज़ाहिर है। राक़िमे सुतूर ने अपनी राय का इज़हार महज़ "नुक़्तए नज़र" के तौर पर किया है जिसे कबूल किया जा सकता है और रद भी, उसे अपनी राय पर कोई इसरार नहीं कि "अयाज़ क़दे ख़ुद बशनासद"।

"اللهم أرنا الحق حقا و ارزقنا اتباعه، وأرنا الباطل باطلا و ارزقنا اجتنابه"

हवाशी

(1) सीरत इब्ने हिशाम 149/2 मतबूआ अलक़लम बैरूत।

(2) बुख़ारी किताबुलइस्तीज़ान, बाब كيف يرد على اهل الذمة السلام (6258)

(3) बुख़ारी كتاب استتابة المرتدين، باب اذا عرض الذمى اوغيره سب النبى صلى الله عليه و سلم، ولم يصرح، نحو قوله السام عليكم (6826)।

(4) मुस्लिम, किताबु फ़ज़ाइलिस्सहाबा, बाब من فضائل ابى ذر رضى الله عنه। (स० 2473)

(बशुक्रिया तर्जुमाने दारुलउलूम देहली, अगस्त 2003 ई०)

मुसाफ़हा का मसनून तरीक़ा

सलाम और मुसाफ़हा, उलफ़त व मुहब्बत की अलामत और इख़लास व वफ़ा का शिआर है। तअल्लुक़ात की दुरुस्तगी और मज़बूती का सबब है, अजनबीयत, बेगानगी, कीना कपट और बुग्ज़ व हसद को ख़त्म करने का एक अहम ज़रीआ है। चुनांचे रहमते आलम (स.अ.व.) का इरशाद है–

"١-تصافحو ايذهب الغل وتهادوا تحابوا وتذهب الشحناء"

(1) मुसाफ़हा करो, ये कीना, कपट को ख़त्म कर देगा और तोहफ़ा दिया करो इससे मुहब्बत पैदा होगी और दुश्मनी ख़त्म होगी। सलाम, अम्न व अमान और बेख़ौफ़ी का पैग़ाम है। बेज़रर ग़म गुसार और हमदर्द होने का अहद है और सरापा सलामती का इज़हार और ऐलान है और मुसाफ़हा के ज़रीआ उसी अहद की तकमील होती है जैसे कि किसी वादा और मआमला की पुख़्तगी के लिए हाथ मिलाने का रिवाज है। चुनांचे हज़रत अबूउमाम नक़्ल करते हैं कि अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि–

"٢-وتمام تحياتكم بينكم المصافحة"

(2) और तुम्हारे सलाम की तकमील मुसाफ़हा से होती है।

मुआहदा की तकमील और मज़बूती के लिए मवाक़ेअ और वक़्त की मुनासबत से एक हाथ भी मिलाया जा सकता है और दो हाथ भी, हदीस से दोनों तरह की कैफ़ियत साबित है और इनमें से किसी एक तरीक़े को दूसरे पर कोई फ़ज़ीलत हासिल नहीं है। शरीअत ने किसी एक कैफ़ियत को कोई ख़ास अहमियत नहीं दी है। यही वजह है कि हदीस की बेशतर किताबों में इस तरह का कोई उनवान नहीं मिलता है कि मुसाफ़हा एक हाथ से मसनून है या दो हाथ से, हालांकि उन किताबों में मामूली, मामूली मसाइल पर उनवानात क़ाइम किए गए हैं। इसिलए किसी एक कैफ़ियत पर इसरार और दूसरे तरीक़ा को बिदअत या कुफ़्फ़ार व मुश्रिकीन का शिआर क़रार देना ग़लत और ना रवा है।

एक हाथ से मुसाफ़हा की रिवायत

"٣۔ تمام التحية الا خذ باليد و المصافحة
باليمنى (رواه الحاكم فى الكنى عن ابى امامة"

(3) सलाम की तकमील हाथ पकड़ने और दाहने हाथ के ज़रीआ मुसाफ़हा करने से होती है।

ये रिवायत एक हाथ से मुसाफ़हा करने की बिल्कुल वाज़ेह दलील है। काश ये रिवायत सही होती तो इस मस्अले के लिए क़ौले फ़ैसल की हैसियत रखती, मगर ये रिवायत ज़ईफ़ है। (4) और इस्तिदलाल के लाइक़ नहीं है।

"٤۔ عن انس بن مالك قال رجل يا رسول الله لرجل
منا يلقى اخاه او صديقه اينحنى له، قال لا قال افيلتزمه
ويقبله، قال لا قال فياخذ بيده ويصافحه قال نعم"

(5) हज़रत अनस से रिवायत है कि एक शख़्स ने दरयाफ़्त किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! अपने भाई या दोस्त से मुलाक़ात के वक़्त झुका जा सकता है? फ़रमाया नहीं, दरयाफ़्त किया कि उससे लिपट जाना और चूमना दुरुस्त है? फ़रमाया नहीं, कहा क्या हाथ पकड़ कर मुसाफ़हा कर सकता है फ़रमाया— हां।

"٥۔ قال عبدالله بن هشام كنا مع النبى صلى الله عليه
وسلم وهو اخذبيد عمر بن الخطاب فقال له عمر يا رسول
الله لانت احب الىّ من كل شئ الا نفسى فقال النبى صلى

الـلّٰه عليه وسلم لا والذی نفسی بيده حتي اكون احب اليک
مـن نفسک فقال له عمر فانه الآن والله لانت احب الّی من
نفسی فقال له النبی صلی الله عليه وسلم الآن يا عمر"

(6) हज़रत अब्दुल्लाह इब्न हिशाम कहते हैं कि हम नबी (स.अ.व.) के साथ थे आप (स.अ.व.) उमर इब्न ख़त्ताब का हाथ पकड़े हुए थे। हज़रत उमर ने कहा कि अल्लाह के रसूल! आप मेरी निगाह में मेरी ज़ात के अलावा तमाम चीज़ों से ज़्यादा अज़ीज़ हैं। नबी (स.अ.व.) ने फ़रमाया उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है तुम उस वक़्त तक मोमिन नहीं हो सकते हो जब तक कि मैं तुम्हारी ज़ात से भी ज़्यादा अज़ीज़ न हो जाऊँ, हज़रत उमर ने कहा अल्लाह की क़सम इस वक़्त आप मेरी ज़ात से भी ज़्यादा महबूब हैं। नबी (स.अ.व.) ने फ़रमाया उमर! अब तुम्हारा ईमान मुकम्मल हो गया। अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) और लख़्ते जिगर हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) के तर्ज़े अमल पर ज़ौजए मुतह्हरात हज़रत आइशा (रज़ि.) इन अलफ़ाज़ के ज़रीआ रौशनी डालती हैं–

"٦ ـ كانـت اذا دخلت عليه قام اليها فاخذ بيدها فقبلها
او اجلسها فی مجلسه و كان اذا دخلت عليها قامت اليه
فاخذت بيده فقبلته واجلسته فی مجلسها"

(7) हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) जब आप के पास आतीं तो आप खड़े हो जाते। उनका हाथ थाम लेते, बोसा देते और अपनी जगह उन्हें बिठाते और अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) जब उनके पास तशरीफ़ ले जाते वह भी खड़ी हो जातीं। हाथ थाम कर बोसा देतीं और अपनी जगह बिठातीं।

हज़रत अनस (रज़ि.) मुलाक़ात और मुसाफ़हा के सिलसिले में रहमते आलम के उस्वए हसना को इन अलफ़ाज़ में ब्यान करते हैं।

"۷۔ كان النبى صلى الله عليه وسلم اذالقى الرجل فكلمه لم يصرف وجهه عنه حتى يكون هو الذى ينصرف اذا صافحه لم ينزع يده من يده حتى يكون هو الذى ينزعها"

(8) नबी (स.अ.व.) जब किसी से मिलते और गुफ़्तगू करते तो अपनी तवज्जोह नहीं हटाते थे। यहां तक कि दूसरा शख़्स ही रुख़ मोड़ कर चला जाता। और जब किसी से मुसाफ़हा करते तो उसके हाथ से अपना हाथ न खींचते यहां तक कि दूसरा शख़्स अपना हाथ न खींच ले।

हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि.) से मनकूल है कि नबी (स.अ.व.) ने सलाम व मुसाफ़हा की फ़ज़ीलत ब्यान करते हुए फ़रमाया—

"۸۔ ان المؤمن اذا لقى المومن فسلم عليه واخذ بيده فصافحه تناثرت خطايا هما كما يتناثر ورق الشجر

(رواه الطبرانى فى الأوسط ورواته لا اعلم فيهم مجروحا)

(9) मोमिन जब किसी मोमिन से मिलता है और उसे सलाम करता है, उसका हाथ थाम कर मुसाफ़हा करता है तो उनकी ख़ताएँ इस तरह से झड़ जाती है जिस तरह दरख़्त के पत्ते।

हज़रत बराअ इब्न अज़िब नबी करीम (स.अ.व.) का इरशाद नक़्ल करते हैं—

"۹۔ ايما مسلمين التقيا فاخذا احد هما بيد صاحبه ثم تفرقا ليس بينهما خطيئة"

(10) जब दो मुसलमान मुलाक़ात करते हैं, एक दूसरे का हाथ थाम लेते हैं फिर अल्लाह की तारीफ़ ब्यान करते

हैं, तो जुदाएगी के वक़्त उनकी कोई ख़ता बाक़ी नहीं रहती। इसी तरह की रिवायत हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि.) और हज़रत अनस (रज़ि.) से भी मनक़ूल है।

(11) मज़कूरा अहादीस के ज़रीआ हाथ के मुसाफ़हा पर इस तौर पर इस्तिदलाल किया जाता है कि इन तमाम रिवायतों में मुसाफ़हा के मौक़ा पर "यद" का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो "वाहिद" है और एक पर दलालत करता है। दो हाथ के लिए अरबी ज़बान में "यदान" इस्तेमाल होता है और इनमें से किसी भी हदीस में "यदान" का लफ़्ज़ नहीं आया है, बल्कि पूरे ज़ख़ीरए हदीस में कहीं भी मुसाफ़हा के मौक़ा पर बसराहत इसका तज़किरा नहीं है।

लेकिन वाक़िआ ये है कि एक हाथ से मुसाफ़हा के लिए ये अहादीस वाज़ेह और सरीह नहीं हैं। क्योंकि "यद" वाहिद बोल कर भी दोनों हाथ मुराद लिए जा सकते हैं। इसलिए कि हर ज़बान में बाज़ अलफ़ाज़ ऐसे होते हैं कि उनमें वाहिद और जमा दोनों के मफ़हूम की गुंजाइश होती है और मौक़ा महल के एतेबार से एक मफ़हूम की तअ़यीन की जाती है। चुनांचे कहा जाता है कि उसकी आंख बड़ी है और उससे उसकी दोनों आंखें मुराद होती हैं। ऐसे ही पैदल चलने को प्यादा चलना कहा जाता है और "पा" वाहिद है। लेकिन उसका इत़िलाक़ दोनों पैरों पर है। इस्तिलाह में इस तरह के लफ़्ज़ को इस्मे जिन्स कहा जाता है। इस्मे जिन्स वह इस्म है जो किसी ज़ाते मुब्हम पर दलालत करे। "ज़ात मुब्हम" का मफ़हूम ये है कि उसमें अदद की तअ़यीन नहीं होती है। बल्कि उसमें जिन्स का फ़र्दे वाहिद या पूरी जिन्स दोनों मुराद लेने का

एहतेमाल रहता है। ये एहतेमाल उस वक़्त तक रहता है जब तक कि किसी ख़ारजी दलील से किसी एक माना की तअ़यीन न हो जाए। चुनांचे कुरआन व हदीस में मुतअ़द्द जगहों पर लफ़्ज़ वाहिद जमा के लिए इस्तेमाल हुआ है जैसे– "ان الانسان لفی خسر" (बिला शुब्हा इंसान ख़सारे में है) इस आयत में "इंसान" लफ़्ज़ वाहिद है और इस्मे जिन्स है और मुराद पूरी जिन्से इंसानियत है। इसी तरह से मशहूर हदीस में कहा गया है कि–

"١٠ ـ المسلم من سلم المسلمون من لسانه ويده"

(12) मुसलमान वह है जिसके हाथ और ज़बान से दूसरे मुसलमान महफूज रहें। इस हदीस में "यद" वाहिद इस्तेमाल हुआ है। लेकिन मुराद सिर्फ़ एक हाथ नहीं है बल्कि पूरी जिन्स "यद" यानी दोनों हाथ मुराद हैं। इसी तरह से उस हदीस में भी जिसे हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि.) नक़्ल करते हैं "यद" वाहिद इस्तेमाल हुआ है, लेकिन मक़्सूद दोनों हाथ हैं।

"١١ ـ اذا استيقظ احد كم من نومه فلا يغمسن يده فى الاناء حتى يغسلها ثلاثا فانه لايدرى ابن باتت يده"

(2) जब तुम में से कोई सो कर उठे तो हाथ को तीन मरतबा धुलने से पहले बरतन में न डाले, क्योंकि उसे मालूम नहीं है कि उसके हाथ ने कहां रात गुज़ारी है।

और हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि–

"١٢ ـ قال لى النبى صلى الله عليه وسلم ناولينى الخمرة من المسجد فقلت انى حائض فقال ان حيضتك ليست فى يدك"

(13) नबी (स.अ.व.) ने मुझ से फ़रमाया कि मस्जिद से चटाई उठाओ। मैंने कहा कि मैं हैज़ की हालत में हूं।

फ़रमाया– "तेरा हैज़ तेरे हाथ में नहीं है।" इस जैसी और अहादीस हैं जिसमें "यद" मुफ़रद इस्तेमाल किया गया है। लेकिन मुराद पूरी जिन्स यानी दोनों हाथ हैं। इसी तरह मुसाफ़हा से मुतअल्लिक़ अहादीस में भी "यद" से सिर्फ़ एक हाथ मुराद नहीं है। बल्कि हाथ की जिन्स मुराद है और हाथ की पूरी जिन्स दो है क्योंकि सहीहुलआज़ा इंसान के दो ही हाथ होते हैं।

दो हाथ से मुसाफ़हा की अहादीस

हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद फ़रमाते हैं कि–

"١٣ ـ علمنى رسول الله صلى الله
عليه وسلم التشهدو كفى بين كفيه"

(14) रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने मुझे इस हाल में तशह्हुद सिखाया कि मेरी हथेली आप के दोनों हथेलियों के दरमियान थी।

मज़कूरा हदीस में इस एहतेमाल से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद महफ़िल में पहले से मौजूद हों और अल्लाह के रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने तशह्हुद की अहम्मीयत के पेशे नज़र तवज्जोह मबजूल कराने के लिए उनके हाथ को अपने दस्ते मुबारक में लिया हो, लेकिन इस इम्कान से सर्फ़े नज़र करना भी ग़ैर हक़ीक़त पसंदाना रवैया होगा, कि इब्न मसऊद ख़िदमते अक़दस में हाज़िर हुए हों और सलाम के बाद दौराने मुसाफ़हा आप (स.अ.व.) ने उन्हें तशह्हुद की तालीम दी हो। इसलिए कि सलाम व मुसाफ़हा के वक़्त हर एक दूसरे की तरफ़ पूरी तरह मुतवज्जेह होता है और उस दौरान जो बात कही जाती है। मुख़ातब के वक़्त हर एक

दूसरे की तरफ़ पूरी तरह मुतवज्जेह होता है और उस दौरान जो बात कही जाती है मुख़ातब उसे पूरी तवज्जोह, इन्हिमाक और ध्यान से सुनता है और याद रखने की कोशिश करता है, अव्वल मुलाक़ात और मुसाफ़हा के दरमियान की गुफ़्तगू मुख़ातब के लिए, एक वसीयत, नीसहत और यादगार बन जाती है और मुतकल्लिम की हैसियत और मरतबा के एतेबार से उस यादगार की क़द्र की जाती है। यही वजह है कि हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद इस रिवायत और उसकी कैफ़ियत को बड़े ज़ौक़ व शौक़, क़द्र और फ़ख़्र के साथ ब्यान करते थे और इस यादगारी हैसियत को बाक़ी रखने के लिए बाज़ फ़ुक़्हा और मुहद्दिसीन ने अपने तलामिज़ा को तशह्हुद सिखलाते हुए उस कैफ़ियत की भी नक़्ल उतारी।

इस इम्कान के पेशेनज़र तशह्हुद सिखलाने के लिए मुसाफ़हा नहीं किया गया, बल्कि मुसाफ़हा ही के वक़्त तशह्हुद की तालीम दी गई। इमाम बुख़ारी (रह.) ने "बाबुलमुसाफ़हा" के तहत आने वाली चार हदीसों में इसे सब से पहले नक़्ल किया और उसके बाद एक दूसरा उनवान है "बाबुलअख़्ज़ बिलयदैन" (दोनों हाथ थामना) इसके ज़ैल में जलीलुलक़द्र मुहद्दिस और फ़क़ीह हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मुबारक और हम्माद इब्न ज़ैद का अमल नक़्ल किया है।

"صافح حماد بن زید ابن المبارک بیدیه"

(15) हम्माद इब्न ज़ैद ने अब्दुल्लाह इब्न मुबारक से दोनों हाथ से मुसाफ़हा किया जिससे ये मालूम होता है कि उन ताबईन या तबअ़े ताबईन। (16) के अहद में दो

हाथ से मुसाफ़हा का मामूल था और ज़ाहिर है कि उन्होंने ये तरीक़ा सहाबा या ताबई से सीखा होगा कि ये हज़रात बिदअ़त ईजाद करने वाले न थे बल्कि इससे मुतनफ़्फ़िर और बहुत दूर थे।

इस अमल के नक़्ल के बाद इमाम बुख़ारी (रह.) दोबारा हज़रत अबदुल्लाह इब्न मसऊद की रिवायत को ब्यान फ़रमाते हैं और इसके अलावा इस उनवान के ज़ैल में कोई दूसरी हदीस नक़्ल नहीं की है। उनके इस तर्ज़े ब्यान से अंदाज़ा होता है कि उनकी निगाह में इस रिवायत से नफ़्से मुसाफ़हा का सुबूत भी होता है और मुसाफ़हा की कैफ़ियत और तरीक़ा भी साबित होता है।

(14) हज़रत अनस (रज़ि.) से मनकूल है कि नबी (स.अ.व.) ने फ़रमाया–

"مامن مسلمين التقيا اخذ احدهما بيد صاحبه الا كان حقا على الله عزو جل ان يحضر دعاء هما ولا يفرق بين ايديهما حتى يغفر لهما"

(17) जब दो मुसलमान बाहम मिलते हैं और उनमें से एक अपने साथी का हाथ थाम लेता है तो अल्लाह तआ़ला उनकी दुआ़ क़बूल करने की ज़िम्मादारी ले लेते हैं और हाथों के अलग होने से पहले उनकी मग़फ़िरत कर दी जाती है।

इस तरह की एक हदीस हज़रत अबूउमामा से भी मनकूल है जिसमें "अकुफ़" (हथेलियाँ) का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है मगर रिवायत ज़ईफ़ है।

(18) इस रिवायत में "यद" की जमा "अैदी" इस्तेमाल की गई है और जमा का इतलाक़ तीन से कम पर नहीं होता है, बल्कि जमा का लफ़्ज़ अरबी ज़बान में तीन या

उससे ज़्यादा के लिए बोला जाता है। इसलिए मुसाफ़हा के लिए दोनों तरफ़ से दो हाथ या कम अज़ कम एक तरफ़ से दोनों हाथ का इस्तेमाल होना चाहिए कि जमा का मफ़हूम और माना उस वक़्त सही होगा।

लेकिन रिवायत्त भी दो हाथ से मुसाफ़हा के लिए सरीह नहीं है, बल्कि इस तरह की रिवायात से दो हाथ के मुसाफ़हा पर इस्तिदलाल ग़लत है और अरबी ज़बान के क़वाइद से नावाक़िफ़ीयत्त की दलील है। इसलिए कि ज़ाब्ता ये है कि अगर "तस्निया" की इज़ाफ़त "तस्निया" की तरफ़ हो तो मुज़ाफ़ को तस्निया के बजाए जमा के लफ़्ज़ से ताबीर करते हैं। जैसे कि क़ुरआने हकीम में है—

"فاقطعوا ایدیهما" और "فقد صغت قلوبكما"

(19) इस रिवायत में भी तस्निया की इज़ाफ़त तस्निया की तरफ़ है। इसलिए मुज़ाफ़ को जमा के लफ़्ज़ से ताबीर किया गया है। हक़ीक़त ये है कि ज़ख़ीरए हदीस में एक या दो हाथ से मुसाफ़हा की सरीह रिवायत नहीं मिलती है। (20) अलबत्ता बैअ़त के लिए सरीह और सहीह अहादीस मौजूद हैं, जिनमें एक और दो हाथ से बैअ़त करने का तज़किरा है जैसे अमर इब्न अलआ़स का ये वाक़िआ— "قال اتيت النبی صلی الله عليه وسلم فقلت ابسط يمينک فلا بايعک فبسط يمينه" (21) मैं नबी (स.अ.व.) के पास आया और कहा कि अपना दाहिना हाथ बढ़ाइये ताकि मैं आप से बैअत हो जाऊँ, तो नबी (स.अ.प.) ने अपना दायाँ हाथ बढ़ा दिया। और हज़रत अब्दुर्रहमान इब्न रज़ीन कहते हैं कि— "مررنا بالربذه فقيل لنا ههنا سلمة بن الاكوع فاتيته فسلمنا عليه فاخرج يديه فقال بايعت بهاتين نبی الله صلی الله عليه وسلم" (22)

हम "ज़बदा" नामी जगह से गुज़रे तो हमें बतलाया गया कि यहां हज़रत सलमा इब्न अक्वअ़ मौजूद हैं। हम उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुए। सलाम किया, उन्होंने अपने दोनों हाथों को दिखाया और कहा कि मैंने इन दोनों हाथो के ज़रीआ अल्लाह के नबी (स.अ.व.) से बैअ़त ली है। इसी तरह की रिवायत के पेशे नज़र शारेह बुख़ारी अल्लामा क़स्तलानी लिखते हैं– "كما كان يبايع رجال بالمصافحة باليدين" (23) जैसा कि मर्दों को देनों हाथ से मुसाफ़हा कर के बैअ़त किया करते थे। ऐसे ही हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसऊद (रज़ि.) के वाक़िआ को अगर मुसाफ़हा न समझा जाए, बल्कि दौराने मजलिस और दरमियाने गुफ़्तगू तालीम की तरफ़ तवज्जोह और अहमियत के पेशे नज़र हाथ थामना मक़्सूद हो तो ये भी बैअ़त ही की एक शक्ल है। जिससे ये इशारा करना मक़्सूद है कि जिस तरह से बैअ़त के ज़रीआ किए गए अहद और वादा को एहतेमाम के साथ याद रखा जाता है उसी तरह रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने हाथ पकड़ कर सहाबए किराम को किसी चीज़ की तालीम दी है। इस एतेबार से ये रिवायत भी दो हाथ से बैअ़त की दलील हो गई, और मुसाफ़हा भी बैअ़त ही की एक क़िस्म और शक्ल है कि सलाम के ज़रीआ मुहब्बत व तअ़ल्लुक़, एज़ाज़ व इकराम का इज़हार और अम्न व सलामती का पैग़ाम देने के बाद अमली तौर पर हाथ मिला कर अहद और पैमान को मज़ीद पुख़्ता बनाया जाता है। चुनांचे अल्लामा कशमीरी इस हक़ीक़त की नक़ाब कुशाई करते हुए कहते हैं– "मुलाक़ात के वक़्त मुसाफ़हा दरहक़ीक़त ज़बानी सलाम को मज़बूत और पुख़्ता बनाना है, क्योंकि

सलाम ज़बान के ज़रीआ अम्न व सलामती का ऐलान है और मुसाफ़हा बैअ़त की तरह है और अमल के ज़रीआ सलामती और शानती की तल्क़ीन है, ताकि मुलाक़ात करने वाला अपने साथी से बेख़ौफ़ व ख़तर हो जाए। और ये जैसा कि हम ने किताब के शुरू में ब्यान किया है कि अरबों ने ज़मानए जाहिलीयत में क़त्ल व ग़ारत गीरी का जो बाज़ार गर्म कर रखा था वह सब को मालूम था कि ख़ौफ़ व खतर में सफ़र करना सिर्फ़ मुहतरम महीनों में मुम्किन था। लेकिन जब इस्लाम का सूरज तुलूअ़ हुआ, अम्न व सलामती की रौशनी हर तरफ़ फैल गई। ख़ौफ़ व ख़तरा के बजाए हर तरफ़ अम्न व आमान का दौर दौरा हुआ तो अल्लाह तआ़ला ने मुलाक़ात के वक़्त दीगर अलफ़ाज़ के मुक़ाबिला में सलाम का लफ़्ज़ मुतऔयन फ़रमाया, ताकि मुलाक़ात करने वाला अपने साथी से बेख़ौफ़ और मुतमइन रहे।

(24) और इस मुनासबत और यकसानियत की वजह से बाज़ हदीसों में "बैअ़ते मख़्सूस के लिए भी मुसाफ़हा का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है, जैसा कि इस रिवायत में है–

"عن اميمة قالت اتيت النبی صلی اللّٰہ علیہ وسلم فی نساء لنبایعه..........قلنا اللّٰہ ورسوله ارحم بناهلم نبايعک فقال رسول اللّٰہ صلی اللّٰہ علیہ وسلم انی لا اصافح النساء"

(25) उमैमा कहती हैं कि चंद औरतों के साथ मैं अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) की ख़िदमत में बैअ़त के लिए हाज़िर हुई। हम ने कहा अल्लाह और उसके रसूल हम पर बहुत ज़्यादा मेहरबान हैं। हाथ बढ़ाइये ताकि हम आप

से बैअ़त हो जाएं तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया कि मैं औरत से मुसाफ़हा नहीं करता हूं।

हासिल ये है कि दोनों तरह से मुसाफ़हा करना साबित है। एक हाथ से भी और दो हाथ से भी, मौक़ा और वक़्त के एतेबार से हर एक की इजाज़त है और किसी एक कैफ़ियत को दूसरे पर कोई अहमियत और फ़ज़ीलत नहीं है, उनमें से किसी एक तरीक़े पर इसरार और एहतिमाम ग़ैर अहम को अहम बनाने के हम माना है। जिसकी वजह से ये बिदअ़त के दाएरे में आ जाएगा, बल्कि ख़ास अहमियत, मुहब्बत, यगानगत और अम्न व सलामती को है, अगर ये हासिल है तो इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है कि मुसाफ़हा एक हाथ से किया जाए या दो हाथ से, लेकिन अगर सलाम व मुसाफ़हा, दिलों की कदूरत, बेगानगी और इख़्तिलाफ़ात ख़त्म करने का ज़रीआ न बने तो वह बेरूह लाश की तरह है और एक हाथ और दो हाथ से मुसाफ़हा ही नहीं बल्कि मुआनक़ा का भी कोई हासिल नहीं है।

हवाशी

(۱) الا صبحی: الامام مالک الموطاء/۳٦۵ط/ اشرفی بکڈپو دیوبند. قال المنذری رواه مالک معضلا وقد اسند من طرق فیها مقال. (الترغیب ۳/۴۳۴)

(۲) الشیبانی: احمد بن حنبل، المسنده/۲٦۰ المکتب الاسلامی بیروت ۱۹۷۸ء قال الالبانی: روی من حدیث عبدالله بن مسعود و ابی امامة والبراء بن عازب..........ضعیف مرفوعا صحیح موقوفا (سلسلة الاحادیث الضعیفة ۴۴۳، ۴۵۲ حدیث ۱۲۸۸).

(۳) المتقی، علی بن حسام الدین ت ۹۷۵ کنز العمال ۹/ ۱۳۱ ط/ الرسالة بیروت ۱۹۷۹ء.

(۴) المبار کفوری: محمد عبدالرحمان ت ۱۳۵۳ تحفة الا حوذی ۷/ ۴۳۱ دار الکتب العربیة بیروت.

(۵) الترمذی، ابوعیسی، محمد بن عیسی (ت: ۲۷۹ھ) کتاب الجامع ۲/ ۹۷ وقال حدیث حسن/ ط کتب خانه رشیدیه دهلی.

(٦) البخاری ابوعبدالله محمد بن اسماعیل (ت: ۲۵٦ھ) کتاب الجامع الصحیح ۲/ ۹۸۱ کتاب الایمان، باب کیف کان یمین النبی صلی الله علیه وسلم و ۲/ ۹۲٦ کتاب الاستیذان، باب المصافحة ط/ رشیدیه دهلی.

(۷) السجستانی، ابوداؤد، سلیمان بن الاشعث (ت: ۲۷۵ھ) کتاب السنن ۳۵۲/۲، کتاب الادب باب فی القیام ط/ مطبع مجیدی کانفور.

(۸) القزوینی، محمد بن یزید بن ماجة، ت ۲۷۳ھ کتاب السنن ۱۲۲۴/۲، فی الزوائد: مدار الحدیث علی زید العمی وهو ضعیف قاله محمد فؤاد عبدالباقی ط/ المکتبة الفیصلیة مکة المکرمة.

(۹) المنذری، عبدالعظیم بن عبد القوی (ت: ۶۵۶ھ) الترغیب والترهیب ۴۳۳/۳ ط/ احیاء التراث العربی ۱۹۶۸ء.

(۱۰) الشیبانی احمد بن حنبل (ت: ۲۴۱ھ)، المسند ۲۹۱/۴

(۱۱) الترغیب والترهیب ۴۳۲/۳.

(۱۲) البخاری، محمد بن اسماعیل، کتاب الصحیح ۶/۱ کتاب الایمان

(۱۳) الترمذی، محمد بن عیسی، کتاب الجامع ۵/۱.

(۱۴) القشیری، مسلم بن الحجاج (ت: ۲۶۱ھ) کتاب الصحیح ۱۴۳/۱ ط/ رشیدیه، دهلی.

(۱۵) البخاری، کتاب الصحیح ۹۲۶/۲).

(۱۶) البخاری، کتاب الصحیح ۹۲۶/۲.

(۱۷) شیخ ولی الدین، ابوعبداللہ نے انہیں تابعی شمار کیا ہے، دیکھئے: الا کمال فی اسماء الرجال / ۵۹۱، ۶۷۸، لیکن علامہ مبارک نے انہیں تابعی ماننے سے انکار کیا ہے اور تبع تابعی قرار دیا ہے دیکھئے: المقاصد الحسنی /۵۶ ط/ اہل حدیث اکیڈمی، مئو، یوپی۔

(۱۸) الشیبانی، احمد بن حنبل، المسند ۱۴۲/۳ قال الهیثمی: رجال احمد رجال الصحیح غیر میمون بن عجلان وثقه ابن حبان ولم یضعفه احمد

(مجمع الزوائد ۸/۳۷) ط/ دارالکتب العربیة بیروت ۱۹۸۲ء

(۱۹) قال الهیثمی: فیه مهلب بن العلاء ولم اعرفه وبقیة رجاله ثقات (مجمع الزوائد ۸/۳۷).

(۲۰) دیکھئے هدایة النحو /۷۰.

(۲۱) قال العلامة ظفر احمد العثمانی: وهی بالید الواحدة اوبالیدین فلانص فیه (اعلاء السنن ۸/۳۷).

(۲۲) القشیری، کتاب الصحیح ۱/۷٦ کتاب الایمان، باب کون الاسلام یهدم ما کان قبله

(۲۳) البخاری، الادب المفرد/۲۵۳ رقم الحدیث ۹۷۳ ط/ المطبعة السلفیة قاهره ۱۳۷۵ھ.

(۲۴) القسطلانی، احمد بن محمد، ابو العباس (ت: ۹۲۳ھ) ارشاد الساری ۷/۳۸ ط/ دار الفکر/بیروت

(۲۵) الکشمیری، محمد انور (ت: ۱۳۵۲ھ) فیض الباری ۴/۲۱۲ ط/ ربانی بکڈپو، دهلی.

(۲٦) النسائی، احمد بن علی، ابوعبدالرحمٰن (ت: ۳۰۳ھ) کتاب السنن ۷/۱۴۹ کتاب البیعة، بیروت لبنان.

بشکریہ ترجمان دارالعلوم ۲۰۰۳ء

❖❖❖

मस्अलाः सलाम करना सुन्नत है और उसका जवाब देना वाजिब है। जो पहले सलाम करे उसको बीस नेकियां मिलती हैं और जवाब देने वाले को दस।

मस्अलाः सलाम करते वक़्त पेशानी पर हाथ रखना या झुकना सही नहीं है। बल्कि बिदअ़त है। मुसाफ़हा की इजाज़त है और ताज़ीम या शफ़्क़त के तौर पर चूमने की इजाज़त है।

मस्अलाः किसी ग़ैर मर्द का किसी ग़ैर महरम औरत को सलाम करना अगर दिल में ग़लत वस्वसा पैदा होने का अंदेशा हो तो जाइज़ नहीं, वरना दुरुस्त है। अलबत्ता सिन रसीदा बुढ़िया को सलाम कर सकते हैं। मजलिस में किसी शख़्स को मुख़ातब कर के सलाम न किया जाए। जब चंद लोग किसी जगह मौजूद हों और बाहर से आ कर कोई शख़्स सलाम करे, उन लोगों में से अगर कुछ आदमी उसके सलाम का जवाब दे दें तो जवाब का हक़ अदा हो जाता है।

मस्अलाः वालिदैन या किसी बुजुर्ग से झुक कर मिलने का हुक्म नहीं है। नीज़ मुसाफ़हा करते वक़्त झुकना नहीं चाहिए।

मस्अलाः मस्जिद में बुलंद आवाज़ से सलाम न किया जाए जिससे नमाज़ियों को तशवीश हो अलबत्ता अगर कोई फ़ारिग़ बैठा हो तो क़रीब आ कर आहिस्ता से सलाम कर लिया जाए।

मस्अलाः जब कोई कुरआन करीम की तिलावत कर रहा हो तो उसको सलाम न किया जाए और उसके ज़िम्मा सलाम का जवाब देना ज़रूरी नहीं है।

मस्अलाः ईद की नमाज़ के बाद मुसाफ़हा या मुआनक़ा करना महज़ एक रिवाजी चीज़ है। शरअन इसकी कोई अस्ल नहीं है। आंहज़रत (स.अ.व.) और सहाबए किराम (रज़ि.) से साबित नहीं है। इसलिए इसको दीन की बात समझना बिदअत है। लोग उस दिन गले मिलने को ऐसा ज़रूरी समझते हैं कि अगर कोई इस रिवाज पर अमल न करे तो उसको बुरा समझते हैं। इसलिए ये रस्म लाइके़ तर्क है।

मस्अलाः किसी बड़े की ताज़ीम के लिए खड़े होने में दो चीज़ें अलग अलग हैं। एक ये कि किसी का ये ख़्वाहिश रखना कि लोग उसके आने पर खड़े हुआ करें, ये मुतकब्बिरीन का शेवा है और हदीस में इसकी शदीद मज़म्मत आई है। चुनांचे इरशाद है कि जिस शख़्स को इस बात से मुसर्रत हो कि लोग उसके लिए सीधे खड़े हुआ करें, उसे चाहिए कि अपना ठिकाना दोज़ख़ में बनाए।

(मिश्कात सफ़्हा–3)

बाज़ मुतकब्बिर अफ़्सरान अपने मातहतों के लिए क़ानून बना देते हैं कि वह उनकी ताज़ीम के लिए खड़े हुआ करें और अगर कोई ऐसा न करे तो उसकी शिकायत होती है, उस पर इताब होता है और उसकी तरक़्क़ी रोक ली जाती है। ऐसे अफ़्सरान बिला शुब्हा इरशादे नबवी (स.अ.व.) का मिस्दाक़ हैं कि उन्हें चाहिए कि अपना ठिकाना दोज़ख़ में बनायें।

और एक ये कि किसी दोस्त, महबूब, बुज़ुर्ग और अपने से बड़े के इकराम व मुहब्बत के लिए लोगों का अज़ ख़ुद खड़ा होना, ये जाइज़ है, बल्कि मुस्तहब है। हदीस पाक

में है कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) जब आंहज़रत (स.अ.व.) के पास तशरीफ़ लाती थीं तो आंहज़रत (स.अ.व.) उनकी आमद पर खड़े हो जाते थे, और उनको अपनी जगह बिठाते और जब आंहज़रत (स.अ.व.) उनके पास तशरीफ़ ले जाते थे तो वह भी आप (स.अ.व.) की आमद पर खड़ी हो जातीं। आपका दस्ते मुबारक पकड़ कर चूमतीं और आप (स.अ.व.) को अपनी जगह बिठातीं। (मिश्कात)

ये क़याम (खड़े होना) ताज़ीम व इजलाल के लिए था। इसलिए मुरीदीन का मशाइख़ के लिए, तलामिज़ा का उस्ताज़ा के लिए और मातहतों का हुक्कामे बाला के लिए खड़ा होना अगर इससे मक़्सूद ताज़ीम व इजलाल या मुहब्बत व इकराम हो तो मुस्तहब है। मगर जिसके लिए लोग खड़े होते हों उसके दिल में ये ख़्वाहिश नहीं होनी चाहिए, कि लोग खड़े हों।

मस्अला: बड़े की ताज़ीम के लिए खड़े होना जाइज़ है मगर बड़े के दिल में ये ख़्याल नहीं होना चाहिए कि लोग उसके लिए खड़े हों। आंहज़रत (स.अ.व.), ज़ाती तौर पर इसको पसंद नहीं फ़रमाते थे कि लोग आप (स.अ.व.) के लिए ताज़ीम के लिए खड़े हों।

(आपके मसाइल और उनका हल जिल्द–7 सफ़्हा–263)

अगस्त 2004 ई0

हिन्दी अनुवाद जनवरी 2009 ई0